प्रकाशक—

साधना-सदन

६९, लूकरगंज, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

१२००

अगस्त, १९४१

मूल्य १)

मुद्रक—

सुशील चन्द्र वर्मा बी० एस-सी०

सरस्वती प्रेस,

जार्जटाउन, इलाहाबाद

अनुवादक का वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक में विश्व-विख्यात रूसी औपन्यासिक फ्योडोर डास्टाएव्सकी की दो रचनाओं का स्वतन्त्र अनुवाद किया गया है। डास्टाएव्सकी के जीवन के रहस्य-जाल-जटिल गहन तत्त्वों के उद्घाटन की कला में अपना सानी नहीं रखता था। उसकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि इतनी सूक्ष्म, मार्मिक और अन्तर्भेदिनी थी कि यूरोप के प्रसिद्धतम मनोविज्ञानाचार्यों ने इस विषय में उसे अपना गुरू माना है। 'अहंवादी की आत्मकथा' के शीर्षक से जो रचना अनुवाद-रूप में वर्तमान पुस्तक में संकलित है, उसके सम्बन्ध में गोर्की का कहना है कि उसमें मानवीय मनोवृत्तियों की उथल-पुथल और उलटे-सीधे, टेढ़े-बाँके चक्रों का जो आश्चर्यजनक चित्रांकण किया गया है उससे केवल शेक्सपियर का चरित्र-चित्रण ही टक्कर ले सकता है। दूसरी कहानी—'सूदखोर की पत्नी'—भी इस विशेषता का अपवाद-रूप नहीं है, इसका प्रमाण पाठकों को उसे पढ़ने के बाद स्वयम् मिल जायगा।

———

अहंवादी की आत्मकथा

१

उस समय मेरी आयु तीस वर्ष की थी। तब तक मैंने जिस प्रकार का जीवन बिताया था वह जैसा ही निर्विचित्र था वैसा ही एकाकी भी था। मेरे न कोई मित्र थे न सगे-सम्बन्धी। अधिकतर अपने भाड़े के कमरे के रुद्ध वातावरण के भीतर बन्द रहना ही मैंने अपने जीवन का नियम बना लिया था। दिन में जब मैं आफ़िस में जाकर काम करता तो वहाँ भी मैं किसी से विशेष बातें नहीं करता था। यहाँ तक कि किसी की ओर देखता तक न था। कारण यह था कि मैं जानता था कि मेरे आफ़िस के सहकर्मी मुझे केवल सिड़ी ही नहीं समझते, वरन् अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अक्सर मैं अपने आप से यह प्रश्न करता था कि केवल मुझ में ही ऐसी कौन-सी विशेषता है जो दूसरों की घृणा उभाड़ती है? मैं अपने एक ऐसे सहकर्मी को जानता था जिसके मुख में चेचक के दाग़ भरे हुए थे, और जिसकी आकृति तथा प्रकृति से घोर नीचता टपकती थी। मुझे आश्चर्य होता था कि इस प्रकार का चेहरा लेकर कोई व्यक्ति लोगों के बीच में अपना मुँह दिखाने का साहस कैसे कर सकता है। मेरे आफ़िस का एक दूसरा

क्लर्क इस कदर गन्दा रहता था कि मारे बदबू के उसके पास बैठा तक नहीं जा सकता था। पर उन दोनों व्यक्तियों में से किसी के मन में इन कारणों से तनिक भी संकोच का भाव उत्पन्न होते मैंने कभी नहीं देखा। वे कभी इस बात के लिए चिन्तित नहीं जान पड़ते थे कि उनके मुखों की अभिव्यक्ति अत्यन्त असुन्दर है, अथवा वे फटे-पुराने और गन्दे कपड़े पहनते हैं। उन्हें केवल एक ही बात की चिन्ता रहती थी—वह यह कि उनके आफ़िस के कामों में कोई ग़लती न रह जाय।

पर मैं हर समय केवल अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ही सोचता रहता था, और अपने रूप-रंग और पोशाक-पहनावे के सम्बन्ध में मुझे अत्यन्त असन्तोष रहता था, और इस कारण मैं स्वयं अपने को अतिशय घृणा की दृष्टि से देखता था। मुझे ऐसा विश्वास था कि मेरे चेहरे से धूर्त्तता और कमीनापन प्रकट होता है। इस प्रकार जब मैं आफ़िस में काम करने बैठता था, तो इस बात की प्रबल चेष्टा करता था कि मेरे मुख के भाव से अधिक से अधिक उन्नत और पवित्र भाव टपकें। मैं मन-ही-मन कहा करता—"भले ही मेरी मुखाकृति असुन्दर और घृणास्पद हो, मैं भरसक इस बात की चेष्टा करता रहूँगा कि मेरे मुख से एक सम्मानपूर्ण, गम्भीर और बुद्धिमत्तापूर्ण भाव झलकता रहे।" पर साथ ही मैं यह बात भी भली भाँति जानता था कि मैं चाहे कैसा ही प्रयत्न क्यों न करूँ, मेरे मुख का भाव कभी समुन्नत और सम्मानपूर्ण नहीं हो सकता, और न कभी उससे बुद्धिमत्ता ही व्यक्त हो सकती है। यदि मेरे कुरूप चेहरे से बुद्धि का तनिक भी आभास व्यक्त होने की संभावना होती तो मुझे कुरूपता के लिए दुःख न होता।

चूँकि मैं जानता था मेरे सहकर्मी मेरे विकृत व्यक्तित्व के कारण मुझ से घृणा करते हैं, इसलिए मैं भी उनसे अत्यन्त असंतुष्ट था और उनके प्रति एक प्रबल प्रतिहिंसा का भाव मेरे मन को हर समय बेचैन किये रहता। साथ ही मैं उनसे डरता भी था, और कभी-कभी यह सोचा करता कि वे मुझसे बड़े हैं। सच बात यह है कि इस युग का व्यक्ति जितना ही अधिक घमंडी होता है, अपने सम्बन्ध में उतना ही अधिक अविश्वास उसके मन में वर्तमान रहता है। मैं यद्यपि बीच-बीच में इस बात की चेष्टा करता था कि दूसरों के आगे सिर ऊँचा करके खड़ा रहूँ, पर ऐन मौक़े पर मेरी आँखें अपने-आप नीची हो जाती थीं। साथ ही मैं दूसरों की आँखो में हास्यास्पद बनना भी नहीं चाहता था, इसलिए प्रतिदिन के साधारण विषयों पर आवश्यकता से अधिक ध्यान देने की चेष्टा करता रहता था। इस बात का भय सदा मेरे मन में बना रहता था कि मेरे स्वभाव की किसी विचित्रता के कारण लोग कहीं मुझे सिड़ी न समझने लगें। इसलिए मैं अपने सहकर्मियों के समान-स्तर में चलने के लिए विशेष चिन्तित रहा करता। पर इस सम्बन्ध में मुझे सफलता नहीं मिलती थी। कारण यह था कि मैं शिक्षा और ज्ञान में अपने साथियों से बहुत आगे बढ़ा हुआ था, वे सब मेरे लिए भेड़ों के समान निर्विचित्र जीवन बिताया करते थे। फल यह होता था कि मैं लाख चेष्टा करने पर भी अकेला पड़ जाता था।

मेरे भीतर दो परस्पर विरोधी भावनाएँ निश्चित रूप से वर्तमान थीं। एक ओर मैं अपने को अत्यन्त उन्नत, सुसंस्कृत और स्वतन्त्रबुद्धि समझता था, और दूसरी ओर मेरा विश्वास था कि मैं एक घृणित और

तुच्छ दास हूँ। मेरा यह ध्रुव विश्वास है कि हमारे युग के प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के मन में इसी प्रकार की परस्पर-विरोधी भावनाएँ घर किये रहती हैं। इस युग की शिक्षा और संस्कृति ही इस प्रकार है। फिर भी इस विश्वास में मेरे अकेलेपन की अनुभूति को किसी प्रकार का सन्तोष नहीं प्राप्त होता था। सच बात यह थी कि मेरे अपनेपन की अनुभूति का विकास आवश्यकता से इतना अधिक हो गया था कि मैं संसार के सब प्राणियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगा था। इसमें सन्देह नहीं कि बीच-बीच में मेरे भीतर भावनाओं की ऐसी लहरें दौड़ती थीं जो मुझे क्षणकाल के लिये अपनेपन की अवनति के भूत से बचा लेती थीं और मैं अपने को समाज के सभी व्यक्तियों के साथ एक रूप में मिलित समझ कर पुलकित होने लगता था। पर इस प्रकार की भावना शीघ्र ही विलीन हो जाती, और मुझे फिर अपने आफ़िस के काम से, अपने सहकर्मियों से, संसार से और समाज से—सब से घृणा होने लगती।

सब से आश्चर्य की बात पाठकों को यह जान पड़ेगी कि मैं जीवन में सदा 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का पुजारी रहा हूँ। हम रूसियों की यह एक विशेषता है कि हमारे भीतर छायावादी तथा रहस्यवादी भावनाएँ कितने ही अधिक परिणाम में क्यों न भरी पड़ी हों, अपने पार्थिव तथा शारीरिक स्वार्थों को हम कभी एक क्षण के लिये नहीं भुलाते। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को प्रतिक्षण भजते हुए भी हम इस सम्बन्ध में कभी असावधान नहीं रहना चाहते कि हमारी मासिक आय में किसी ज़रिये से किसी प्रकार की कमी तो नहीं आ रही है, अथवा हमारा नौकर हमें ठग तो नहीं रहा है।

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का उपासक होने के कारण मैं अपने आफ़िस के काम से घृणा करता था और उस काम को करना अपना अपमान समझता था। पर इस सम्बन्ध में मैं बड़ा सतर्क रहता था कि मेरा वेतन मुझे नियत समय पर मिल रहा है या नहीं; मेरा नौकर घर के मासिक व्यय का ठीक-ठीक हिसाब मुझे देता है या नहीं। दूसरे देशों के छायावादी कवि अथवा लेखक अथवा विचारक जब किसी आध्यात्मिक भाव से विह्वल हो उठते हैं, तो उन्हें किसी तुच्छ विषय की सुध नहीं रहती, और वे अपनी आध्यात्मिक भाव-तरंगों में पूर्णतया बह जाते हैं। पर भगवान ने हम रूसियों को इतना मूर्ख नहीं बनाया है। हम किसी भी मानसिक स्थिति में अपने स्वार्थों की अवज्ञा नहीं करते। हाँ, यह परम सत्य है कि हमारे छायावादी कवि अथवा लेखक एक ओर अनन्त में निर्मुक्त उड़ान भर सकते हैं, और दूसरी ओर अपने रात-दिन के सांसारिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये नीच से नीच काम करने को पूर्ण रूप से प्रवृत्त हो सकते हैं। यह हमारे ही देश में सम्भव है कि कोई व्यक्ति एक गुंडे का जीवन बिताते हुए भी एक महान् और उच्चाशय कलाकार हो सकता है। अन्य किसी भी देश के कलाकार में आप इस प्रकार व्यवहार-कुशलता और धूर्त्तता का आश्चर्यजनक मिश्रण नहीं पावेंगे।

मैं भी अपने को किसी छायावादी कलाकार से कुछ कम नहीं समझता। इसलिए मुझमें धूर्त्तता की कोई कमी स्वभावतः नहीं रह सकती थी। कुछ भी हो अपने संगी-साथियों के प्रति विमुख हो कर मैं आफ़िस से घर लौटने पर अपनी गन्दी कोठरी में बन्द रहकर विभिन्न विषयों की

पुस्तकों के अध्ययन में लगा रहता था पर बीच-बीच में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की इस ऐकान्तिक 'साधना' से मैं इस क़दर ऊब उठता था कि उससे मुक्ति पाने के लिए छटपटाने लगता। फल यह होता था कि तरह-तरह की वासनाओं के आवेग मेरे मास्तिष्क को और मन को चारों ओर से घर दबाते, और मैं घृणित से घृणित कल्पनाओं में रत रहकर अपनी उन वासनाओं की मानसिक तुष्टि किया करता था।

मेरे प्रतिदिन के जीवन-क्रम में कोई भी बात ऐसी नहीं थी जो मुझे अपनी ओर प्रबल वेग से आकर्षित करके उच्छृंखल चिन्ताओं से मुक्ति देती। फल यह देखने में आता था कि मैं घोर मानसिक अवसाद से ग्रस्त होकर निश्चेष्ट व्याकुलता से सब समय पीड़ित रहता। इस भयंकर निश्चेष्टता से मैं किसी भी उपाय से अपना पिंड छुड़ाना चाहता और फलस्वरूप रात में चकलों की प्रायान्धकार गलियों में चक्कर लगाया करता था। कभी-कभी अकारण ही किसी व्यक्ति से अथवा व्यक्तियों से झगड़ा मोल लेने की प्रवृत्ति अदम्य वेग से मेरे मन में जागरित हो उठती।

२

एक दिन रात के समय मैं इसी प्रकार की एक गली में चक्कर लगा रहा था। एक शराबखाने के भीतर मेरी दृष्टि गई। मैंने देखा कि वहाँ कुछ लोग 'बिलियर्ड' खेल रहे हैं। अकस्मात् मैंने देखा कि दो व्यक्ति खेलते-खेलते आपस में लड़ने लगे हैं। कुछ ही देर बाद मैंने देखा कि उन लड़नेवाले सज्जनों में से एक को उसके साथियों ने उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दिया। अन्य किसी भी समय इस प्रकार का दृश्य निश्चय

ही मेरे मन में घृणा उत्पन्न करता, पर उस समय मैं अपनी निश्चेष्टता से इतना अधिक पीड़ित हो रहा था कि अकारण ही किसी से लड़ने-झगड़ने की इच्छा मेरे मन में ज़ोर मार रही थी। मैं यह चाहने लगा था कि मैं भी उसी व्यक्ति की तरह पीटा जाऊँ जिसे इन सज्जनों ने खिड़की से बाहर फेंका है। अवसाद-ग्रस्त मनुष्य की निश्चेष्टता कभी-कभी उसकी मनो-भावनाओं को किस हद तक विकृत बना देती है यह देखकर आश्चर्य होता है। उस समय मैं न तो शराब पिये था, न किसी प्रकार की बदहवासी मुझ में वर्तमान थी। फिर भी वह अद्भुत खामखयाली भूत की तरह मेरे सिर पर सवार हो गयी। मैंने भीतर प्रवेश किया और बिलियर्ड खेलने के कमरे में जा पहुँचा। भीतर जाकर किसी से झगड़ने का साहस मुझे न हुआ। कुछ देर बाद मैं निराश लौटने ही को था कि सहसा एक अफ़सर ने मेरी बुद्धि ठिकाने लगा दी। बात यह थी कि वह बाहर जाना चाहता था, और मैं रास्ता रोके खड़ा था। अफ़सर ने बिना कुछ बोले मेरी गर्दन पकड़ कर मुझे धक्का देकर वहाँ से हटा दिया, और चुपचाप बाहर चला गया। उसने एक बार मेरी ओर झाँका तक नहीं, जैसे मैं एक मानव-प्राणी नहीं, बल्कि एक तुच्छ कीट होऊँ।

साधारण अवस्था में मैं रास्ता रोकने के लिये उससे क्षमा माँगता, पर इस बार मैंने अपने को अत्यन्त अपमानित अनुभव किया, और मेरे क्रोध की सीमा न रही। उस अफ़सर ने मुझे एक मक्खी से भी बदतर समझा! सोच-सोचकर मेरा रक्त भीतर-ही भीतर खौल रहा था; पर उस अपमान का बदला किसी भी तरह चुकाने का कोई उपाय मुझे नहीं सूझ रहा था। यदि वह मुझे दुतकारता और मुझे कुछ कहने का अवसर देता,

तो मैं संभवतः दो-चार लम्बे-चौड़े साहित्यिक वाक्यों में उसे धिक्कार कर लज्जित कर देता। पर उसने मुझे इस कदर तुच्छ समझा कि मेरी ओर देखने तक की तनिक आवश्यकता न समझी, बोलना तो दूर किनार !

फिर भी मैं यदि साहस करता, तो पीछे से दो चार कड़े शब्द बोल-कर उसे ललकार सकता था। पर वह था पूरे छः फीट का पहलवान, और मैं एक अत्यन्त क्षीण, दुर्बल और मुर्दादिल प्राणी ! इसलिये मैं जी मसोसकर और अपना रक्त स्वयं पीकर रह गया।

मेरे अपमानित मन के दुःख और क्रोध की सीमा नहीं थी। पर मैं अपमान का बदला चुकाने में एकदम असमर्थ था। मैं चुपचाप घर को वापस चला गया, और दूसरे दिन फिर मैंने प्रतिदिन का घृणित कार्य-क्रम जारी रखा। प्रतिपल मैं अपमान की वेदना से पीड़ित रहने लगा। प्रतिक्षण मैं इस चिन्ता से व्यस्त रहने लगा कि किस उपाय से उस घमंडी अफ़सर को परास्त किया जाय। वास्तव में मैं उतना कायर भी नहीं था जितना आप लोग समझ रहे होंगे। नहीं; कार्यरूप से भले ही मैं कायरता का परिचय देता रहा होऊँ, पर मेरे हृदय में यथेष्ट साहस वर्तमान था। आप लोग मेरी इस बात पर हँस सकते हैं, पर मैं यथार्थ बात कह रहा हूँ। यदि वह अफ़सर मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करना स्वीकार करता, तो मैं बिना किसी झिझक के उसे इसके लिए ललकारता। पर मैं जानता था कि वह अपने को मुझ से इतना ऊँचा समझता है कि कभी मेरी इस प्रकार की चुनौती को स्वीकार न करेगा। द्वन्द्वयुद्ध समान स्थितिवालों के बीच चलता है, और मेरी सामाजिक स्थिति उस अफ़सर की तुलना में अत्यन्त हीन थी।

यदि सच पूछा जाय, तो मुझमें शारीरिक साहस की कमी कभी नहीं रही है। वह अफ़सर कितना ही बड़ा पहलवान क्यों न रहा हो, मैं अवश्य ही उससे उलझ पड़ता। पर मुझ में नैतिक साहस का सदा अभाव रहा है। मैं इस बात से नहीं डरता था कि उसे खरी-खोटी सुनाने पर वह मुझे बुरी तरह पीटेगा, अथवा उठाकर खिड़की के रास्ते से बाहर फेंक देगा। मुझे डर इस बात का था कि मैं उसे जब साहित्यिक भाषा में डाँट बताऊँगा, तो उससे वह क्रुद्ध न होकर एक अच्छा विनोद समझकर हँस पड़ेगा। उसी हँसी से मेरा जो अपमान होता, वह गलधक्के के अपमान से भी अधिक तीव्र और मार्मिक होता। ये अफ़सर लोग साहित्यिक गर्जना का महत्त्व तनिक भी नहीं समझते, इसलिये मैं उनकी आँखों में एक विदूषक से अधिक महत्व न रखता।

कुछ भी हो, तब से उस अफ़सर के प्रति मेरे मन में विद्वेष का भाव दिन पर दिन बढ़ता चला गया, और जब-जब मैं उसे रास्ते में चलते हुए देखता, तो मन-ही मन कुढ़कर रह जाता। मुझे विश्वास है कि मेरी ओर देखने पर भी वह मुझे कभी पहचान न पाता। पर मैं उसे अच्छी तरह पहचानता था, और वह किन-किन रास्तों से होकर कहाँ जाता है, इस बात का भी पूरा पता मुझे लग गया था। कई वर्ष बीत गये, पर मैं उस अफ़सर द्वारा अपमानित होने की बात को न भूला। बल्कि मेरे मन में उसके विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना समय के साथ उग्र से उग्रतर होती चली गयी। उसका नाम क्या है, वह किस आफ़िस में काम करता है, कहाँ रहता है या कोई और भी उसके साथ है, आदि सब बातों का ठीक-ठीक पता मैंने मालूम कर लिया था, और

निरन्तर इस चिंता में मग्न रहता था कि किस अवसर पर, किस स्थान में और किस समय, उससे अपने अपमान का बदला चुकाया जाय।

बहुत सोचने के बाद अन्त में एक उपाय मुझे सूझा। मैंने उन अफ़सर को कहानी का एक पात्र बनाकर शब्दों द्वारा उसका एक ऐसा कार्टूननुमाँ चित्र अंकित किया जो मेरी राय में निश्चय ही उसका मर्मच्छेद करने में समर्थ होता। पात्र का नाम मैंने ऐसा रखा जो उस अफ़सर के नाम से मिलता-जुलता था, और घटनाओं का ऐसा क्रम रखा जिनमें उसे यह भ्रम नहीं हो सकता था कि वह कहानी उसी को लक्ष्य करके लिखी गयी है। मैंने बड़े उत्साह से वह कहानी लिखी, और जब वह तैयार हो गयी, तो मैंने उसे एक पत्र में प्रकाशनार्थ भेज दिया। पर पत्र के सम्पादक ने उसे नहीं छापा। इससे मेरे क्रोध ने भीतर-ही-भीतर रुद्ध गर्जन के आवेग से और अधिक भयंकर रूप धारण कर लिया। जब यह प्रयत्न भी असफल हुआ, तो मैंने एक लम्बा-चौड़ा पत्र उस अफ़सर के नाम लिखा, जिसमें सुन्दर और शिष्ट साहित्यिक भाषा द्वारा उसे लज्जित करने की पूर्ण चेष्टा करके मैंने यह इंगित भी कर दिया कि यदि वह अपने व्यवहार के लिये क्षमा नहीं माँगेगा, तो मुझे विवश होकर उसे द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारना होगा। मैंने इतने सुन्दर काव्यात्मक रूप से वह पत्र लिखा था, उसमें 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का ऐसा अच्छा प्रयोग किया था कि मैं सोचने लगा—'यदि उस अफ़सर में कुछ भी समझ होगी तो वह उसे पढ़ते ही स्वयम् मेरे पास आकर मुझसे क्षमा चाहते हुए गले मिलेगा। मैं उसे क्षमा कर दूंगा, और वह मेरे गुणों का क़ायल होकर मेरा सच्चा मित्र बन जायगा। वह अपने उच्च पद का

गौरव मेरे चरणों पर अर्पित करेगा, और मैं अपनी उच्चकोटि की शिक्षा और संस्कृति से उसे लाभान्वित करूँगा।'

यह सोच-सोचकर मैं परम पुलकित होने लगा, और अपने लिखे हुए पत्र को पढ़-पढ़कर स्वयम् हर्ष-विभोर होने लगा। यह स्मरण रहे कि उस अफ़सर ने शराबखाने के 'बिलियर्ड रूम' में मेरा जो अपमान किया था उस घटना को दो वर्ष बीत चुके थे, और इतने दिनों बाद मैं उस अपमान का बदला चुकाने के उद्देश्य से वह पत्र भेजने जा रहा था। पर भगवान् को मैं सदा इस बात के लिये हार्दिक धन्यवाद देता रहूँगा कि उन्होंने मेरी मति फेर दी और मैंने वह मूर्खतापूर्ण पत्र नहीं भेजा। यदि वह पत्र मैंने भेज दिया होता, तो उसका क्या परिणाम होता, यह सोच कर इस समय भी मेरा रक्त बर्फ़ की तरह ठंडा होकर जमने लगता है। उफ़! मारे लज्जा और ग्लानि के मैं मर ही गया होता!

कुछ भी हो, अन्त में मैंने एक दिन अपने अपमान का प्रतिशोध ले ही लिया, और वह भी बड़ी शान के साथ। अचानक मेरे मन में एक कमाल की सूझ उत्पन्न हो गयी। संध्या को चार बजे बाद मैं अक्सर नेव्सकी प्रासपेक्ट नामक स्थान में टहलने के लिये जाया करता था। वहाँ फ़ैशनेबिल स्त्री-पुरुषों की भीड़ के बीच में अपने फटे-पुराने कपड़े और भोंड़ी सी शक्ल लेकर धक्के खाते हुए और धक्के देते हुए चहल-क़दमी करना मुझे अच्छा लगता था। यद्यपि साधारण पुरुषों को ठेलने में मुझे किसी प्रकार की हिचकिचाहट का अनुभव नहीं होता था, तथापि जब कोई अफ़सर या मुझसे अच्छी सामाजिक स्थिति वाला व्यक्ति मेरे पास से होकर गुज़रता, तो मैं उसके रास्ते से हटकर अलग

खड़ा हो जाता —उसके कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलने का साहस मुझे नहीं होता था। वहाँ टहलते हुए सब समय मेरे मन में अपनी इस हीनता की अनुभूति मार्मिक पीड़ा पहुँचाती रहती कि मैं एक साधारण क्लर्क हूँ, फटे-हाल हूँ और मेरा व्यक्तित्व अत्यन्त महत्त्वहीन है। मुझे ऐसा लगता था कि उस अत्यन्त उज्ज्वल और फ़ैशनेबिल समाज के बीच में मैं एक गन्दी मक्खी की अपेक्षा अधिक महत्त्व नहीं रखता हूँ। वह मक्खी बहुत बुद्धिमान, और सुसंस्कृत है, इसमें संदेह नहीं, और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का बोध उस मक्खी को औरों की तुलना में अधिक है, यह भी माना; पर है वह मक्खी ही! नेव्सकी प्रासपेक्ट में हवाखोरी के लिये आये हुए उच्चस्तर के स्त्री पुरुषों की दृष्टि में वह अत्यन्त जघन्य और तुच्छ है! पर यह सब जानते हुए भी मैं क्यों वहाँ टहलने के लिये जाया करता था, और अपनी हीनता की अनुभूति को और अधिक बढ़ने का अवसर देता था, यह मैं स्वयम् नहीं जानता।

अचानक मेरा ध्यान इस बात की ओर आकर्षित हुआ कि जिस अफ़सर ने मेरा अपमान किया था, वह भी विशेष उत्सवों के अवसरों पर नेव्सकी प्रासपेक्ट में आया करता है। जब वह भीड़ के बीच में चलता था तो वह भी अपने से बड़े अफ़सरों के लिये रास्ता छोड़ देता था, पर अपने से निम्नस्तर के व्यक्तियों को धक्का देते हुए वह इस प्रकार बेझिझक आगे बढ़ जाता था जैसे उसके सामने का रास्ता एकदम साफ़ हो। जब वह कभी टहलते हुए मेरे आमने-सामने आकर खड़ा होता, तो इच्छा न होने पर भी मैं जैसे किसी अज्ञात शक्ति के दबाव से उसके लिये रास्ता छोड़कर चुपचाप अलग हट जाता। अलग हटते हुए यद्यपि

मेरा हृदय जल भुनकर राख होने लगता, किन्तु फिर भी उसका रास्ता रोकने का साहस मुझे न होता। अक्सर रात-रात भर यह सोचकर मुझे नींद न आती कि मैं अपनी घोर कायरतावश एक साधारण अफ़सर के व्यक्तित्व से भयभीत होकर रास्ते में चलते हुए उसके सामने से अलग हट जाता हूँ। कभी कुछ देर के लिये नींद आती भी तो मैं सहसा चौंककर जाग पड़ता और अपने आप से यह प्रश्न करता—'तुम इतनी अधिक मूर्खतापूर्ण कायरता का प्रदर्शन क्यों करते हो? जब-जब वह अफ़सर तुम्हारे सामने से होकर गुज़रता है तब-तब तुम क्यों उसके लिये रास्ता छोड़ देते हो? कभी उसने भी तुम्हारे लिये रास्ता छोड़ा है? तुम में उसके कन्धे से कन्धा भिड़ाकर बेधड़क चलने का साहस क्यों नहीं है?"

पर मैं चाहे कितना ही अपने को अपनी इस कायरता के लिये कोसता रहा होऊँ, ऐन मौक़े पर मेरा सारा पूर्वकृत निश्चय ढह जाता था, और मैं उसके लिये रास्ता न छोड़ने का साहस नहीं बटोर पाता था। एक बार मैंने निश्चय किया कि जब वह अफ़सर मेरे सामने से होकर गुज़रना चाहेगा, तो मैं अपने स्थान से हटूँगा नहीं, और जान बूझकर उसका रास्ता रोककर खड़ा हो जाऊँगा। तब देखें, वह क्या करता है! इस निश्चय ने मेरे मन में भूत की तरह डेरा जमा लिया। कैसे और कब वह विचार कार्यरूप में परिणत हो सकेगा, इस चिन्ता से मैं प्रतिपल बेचैन रहने लगा। मैंने नेव्सकी प्रासपेक्ट में प्रतिदिन नियमित रूप से जाना आरम्भ कर दिया। मैं पहले इस सम्बन्ध में पूर्ण प्रयोग कर लेना चाहता था कि ऐन मौक़े पर मुझे ठीक किस प्रकार

अफ़सर का रास्ता रोककर खड़े हो जाना होगा। अपने प्रयोगों से मुझे बहुत संतोष हुआ। मेरे मन में यह विश्वास जम गया कि अफ़सर से बदला लेने का जो उपाय मैंने सोचा है वह केवल व्यावहारिक ही नहीं, बल्कि सुन्दर भी है। मैं मन-ही-मन अपने निश्चय को और अधिक निश्चित बनाने की चेष्टा करते हुए अपने-आप से कहता—"इसमें सन्देह नहीं कि मैं उसका रास्ता रोकते हुए उसे धक्का नहीं दूँगा। मैं पहले केवल अकड़ कर खड़ा हो जाऊँगा, फिर शान के साथ उसके कन्धे से कन्धे भिड़ाकर आगे बढ़ जाऊँगा।"

इस निश्चय की तैयारी में मुझे बहुत दिन लग गये। मैंने यह भी सोचा कि अफ़सर के कन्धे से कन्धा भिड़ाने के लिये मुझे कपड़े का एक नया और बढ़िया सूट पहनकर जाना होगा, तभी मेरी अकड़ और शान का प्रभाव उस पर तथा जनता पर पड़ सकता है। 'जनता' से मेरा आशय 'फ़ैशनेबिल' जगत् के प्रतिनिधियों से था। मैं चाहता था कि मेरी शानदार पोशाक देखकर कौन्टेस 'ए०', प्रिन्स 'बी०' तथा अन्यान्य प्रतिष्ठित सज्जन और महिलाएँ मुझे सामाजिकता में उस अफ़सर से कुछ कम न समझें।

पर बढ़िया 'सूट' के लिये काफ़ी रुपयों की आवश्यकता थी जिनका मेरे पास एकदम अभाव था। अपने आफ़िस के जिस विभाग में मैं काम करता था वहाँ का प्रधान एन्टन सिटोचकिन नामक व्यक्ति मुझे रुपया उधार देगा, यह आशा मुझे नहीं थी; क्योंकि वह एक नम्बर का कंजूस था। दूसरे किसी पैसेवाले व्यक्ति से मेरी घनिष्ठता नहीं थी। रुपये का प्रबन्ध कहाँ से और कैसे किया जाय इस चिन्ता

में मुझे तीन रातें अनिद्रावस्था में बितानी पड़ीं। कभी मैं हृदय को कड़ा करके यह निश्चय कर लेता कि इस प्रकार की लज्जा और संकोच त्याग कर एन्टन सिटोचकिन के घर जा धमकूँ और उससे क़र्ज़ का प्रस्ताव करूँ। पर फिर उसके शील-स्वभाव और बात-व्यवहार का स्मरण होते ही मेरा सारा उत्साह ढीला पड़ जाता और मेरा हृदय ग्लानि और चिंता के कारण बेतहाशा धड़कने लगता।

अन्त में साहस (या दुस्साहस) करके मैंने एक दिन एन्टन सिटोचकिन से प्रार्थना कर ही डाली। पहले तो मेरे प्रस्ताव पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पर एक लज्जा का बाँध टूटने पर मैं उसे योंहीं नहीं छोड़ सकता था। इसलिये किसी तरह अपना पिंड छुड़ाने के लिये उसने मुझे रुपये दे ही डाले। उनसे मैंने अपने मन का सूट तैयार करवाया। उसे पहन कर जब मैं पहले दिन अफ़सर से मुठभेड़ के उद्देश्य से बाहर निकला तो लज्जा, संकोच और ग्लानि ने मुझे बुरी तरह धर दबाया। फल यह हुआ कि उसे दूर ही से देखकर मैं पहले ही उसके रास्ते से अलग हटकर खड़ा हो गया। दूसरे दिन जब मैंने उसे देखा, तो मेरा निश्चय फिर ढीला पड़ गया। इस प्रकार कई दिन बीत गये और अपने निश्चय को कार्यरूप में परिणित करने का साहस मुझे नहीं हो पाता था। कई बार ऐसा हुआ कि पूर्वोक्त अफ़सर मेरे इतने पास से होकर गुज़रा कि धक्कमधक्का होने से बाल-बाल बचकर रह गया। पर उसने मेरी ओर एक बार आँख उठाकर देखा तक नहीं। अन्त में एक बार मैं जब उसे सामने से आते हुए देखकर उसके कन्धे से कन्धा भिड़ाने की बात सोच रहा था कि मेरा हृदय

बेतहाशा धड़कने लगा। जब वह मुझसे केवल एक ही क़दम की दूरी पर आ पहुँचा, तो मुझे मूर्च्छा सी आने लगी और मैं उसके चरणों के पास गिर गया। वह अफ़सर तनिक भी विचलित न होकर मेरे ऊपर पाँव रखकर सीधा आगे को निकल गया।

उस रात घोर आत्मग्लानि से पीड़ित होने के कारण मुझे ज्वर ने धर दबाया, और सन्निपात की-सी दशा में मैं अंड-बंड बकने लगा। पर दूसरे दिन मेरी तबियत ठीक हो गयी और संध्या को मैं फिर नेव्सकी प्रासपेक्ट की ओर टहलने के लिए निकल पड़ा। मैंने निश्चय कर लिया कि यदि आज अफ़सर को मैं परास्त न कर सका, तो फिर कभी नेव्सकी प्रासपेक्ट की ओर क़दम नहीं बढ़ाऊँगा। इस बार मेरी विजय हुई। ज्योंही मैंने अफ़सर को सामने की ओर से आते हुए देखा तो मेरे निश्चय ने अत्यन्त दृढ़ रूप धारण कर लिया। मैंने अपने मुख में एक भयंकर भाव लाने का प्रयत्न किया और सिर ऊँचा करके धीर, गम्भीर और निश्चित पगों से आगे को बढ़ा चला गया। अफ़सर जब मेरे एकदम निकट आ गया, तो मैं एक इंच भी अपने स्थान से न हटा। अन्त में मेरा बहुत दिनों का मनोरथ सिद्ध हो गया—उस अफ़सर के कन्धे से मेरा कन्धा बड़े ज़ोरों में भिड़ गया। उसने उस बार भी मेरी ओर पूर्ण दृष्टि से नहीं देखा और तनिक भी विचलित न होने का भाव दिखाकर सीधा आगे को निकल गया। पर मेरे हर्ष का पारावार न रहा। मुझे इस बात का पूर्ण संतोष हो गया कि मैंने उस घमंडी अफ़सर से इतने दिनों बाद अपना बदला चुका लिया। मैंने उसके लिए रास्ता नहीं छोड़ा, और उसके कन्धे से

कन्धा भिड़ाया । यह मैंने कितनी बड़ी वीरता की, इसे मैं ही जानता हूँ !

३

इस घटना के वाद से मेरी मानसिक अवस्था में एक विशेष परिवर्तन आ गया । मैंने असंयत और उच्छृङ्खल जीवन बिताना छोड़ दिया । पर इस उपाय से आफ़िस के बाहर समय बिताना मेरे लिए दूभर हो गया । फल यह हुआ कि मेरी छायावादी कल्पनाएँ तूल पकड़ने लगीं । 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के चिन्तन में मेरे दिन बीतने लगे । मैं अत्यन्त सुन्दर, महान और विश्व-कल्याणकारी भावनाओं की कल्पना में प्रतिपल निमग्न रहकर तरह-तरह के स्वप्नों में विभोर रहने लगा । तीन महीने तक मैं अपनी अन्धगुहा के भीतर बन्द रहकर कल्पना-लोक के मुक्त प्रांगण में विचरता रहा । उन दिनों मेरी मानसिकता ऐसी उन्नत दशा को प्राप्त हो गयी थी कि जिस कायरता से मैं पूर्व उल्लिखित अफ़सर के साथ पेश आया था उसका लेश भी अब मुझमें नहीं रह गया था । अफ़सर वाली घटना को मैं एकदम भूल सा गया था । मैं छायामयी कल्पनाओं के सहारे से एक ऐसे ऊँचे स्तर में पहुँच गया था जहाँ से संसार के सब मनुष्य (जिनमें पूर्वोक्त अफ़सर भी शामिल था) मुझे अत्यन्त दयनीय जान पड़ते थे । अपने चिन्तन के क्षणों में मैं अपने को एक पहुँचा हुआ सन्त और मानव जाति का पथ-प्रदर्शक समझने लगा था और दीन-हीन दलित और पतित मनुष्यों के प्रति करुणा और प्रेम के भाव से मेरा हृदय गद्गद होकर पुलकाकुल हो उठता था ।

धीरे-धीरे मेरे मन में यह विश्वास जमने लगा कि किसी दिन मैं अपने वर्तमान के बद्ध वातावरण से मुक्त होकर अपने नरक-निर्वास की वज्र दीवारों को तोड़कर बाहर निकलूँगा और सारी भावना को अपने अन्तर की अविरत-प्रवाहित करुणा-धारा से आप्लावित करूँगा। किस उपाय से मुक्त हूँगा इस सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा मेरे मन में उत्पन्न नहीं होती थी; पर मुझे विश्वास था कि कोई ऐसी अलौकिक घटना निश्चय ही घटेगी जो मेरे वज्र-बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके मुझे मनुष्य-समाज के कर्मक्षेत्र का सर्वप्रधान व्यक्ति बना देगी। इसी सिलसिले में यह स्वप्न देखता कि मैं अपनी अन्धगुहा के दीर्घ निर्वासन से बाहर निकल कर दलित मानवता के उद्धार के लिए एक सफेद घोड़े पर सवार होकर कर्म-भूमि में आ पहुँचा हूँ; जनता में मेरे महान् स्वागत की लहर उमड़ चली है; चारों ओर से जयध्वनि हो रही है; सुन्दरी कुमारियाँ मेरे ऊपर पुष्प-वृष्टि कर रही हैं; मैं मन्द-मन्द मुसकराकर प्रेमभाव के सरस प्रदर्शन से सबको कृतार्थ कर रहा हूँ। मेरी कल्पना मुझे बीच की दशा में कभी नहीं रहने देती। या तो मैं कीचड़ की गन्दगी में लोटना पसन्द करता था, या विश्व-जनवन्द्य महात्मा के रूप में अपने व्यक्तित्व की कल्पना करता था।

जब मैं अपनी तत्कालीन वास्तविक परिस्थिति की बात सोचता, तो यह सोचकर मैं सन्तोष प्राप्त कर लेता कि मैं एक प्रचंड प्रतिभाशाली महापुरुष हूँ, और महापुरुषों की यह विशेषता है कि नरक की गन्दगी में उनके पाँव डूबे रहने पर भी उनका मस्तक सदा स्वर्ग के उच्चतम शिखर से जाकर टकराता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस

दिन मेरी नारकीय अनुभूतियाँ अधिक प्रबल होतीं उसी दिन मेरी स्वर्गीय भावनाओं का ज्वार सबसे अधिक वेगशील रहता।

छायावादी कवियों से उधार-प्राप्त भावुकता को अपने अहंभाव का इन्द्रधनुषी रंग देकर मैं अनेकानेक विचित्र चित्रमय कल्पनाओं से उसे सजाता रहता। उन सब कल्पनाओं द्वारा मेरे अहंकार की चरम तुष्टि होती थी। मैं समस्त मानव-जाति से अपने को ऊँचा उठा हुआ पाता। मैं यह स्वप्न देखता कि सारी जनता मेरे पैरों के नीचे लोट रही है और भक्तिभाव से गद्गद होकर यह घोषणा कर रही है कि मैं एक पूर्णता-प्राप्त मनुष्य—नहीं—महात्मा हूँ। मैं उनके सब पापों के प्रति क्षमा प्रकट करते हुए उन्हें आत्मोन्नति का मार्ग प्रदर्शित कर रहा हूँ। कभी मैं कल्पना करता कि मैं संसार का सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी कवि हूँ और मानव-जाति को चिर-कल्याण और स्थायी आनन्द की ओर प्रेरित कर रहा हूँ। कभी यह स्वप्न देखता कि मुझे अनन्त धनराशि कहीं से प्राप्त हो गयी है और मैं उस धन को लोक-कल्याण के लिए मुक्तहस्त होकर खर्च कर रहा हूँ; उक्त अमित धन का इस प्रकार उदारता के साथ सदुपयोग करते हुए मैं धन की तुच्छता का उपदेश भी जनता को देता जा रहा हूँ और अपने पिछले पापों—बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि अपनी कवित्वपूर्ण विलासिता की भावनाओं—को स्पष्ट शब्दों में खुले आम स्वीकार करता जाता हूँ। सारा संसार मेरी उक्त स्वीकारोक्ति को सुनकर मेरे स्वभाव की सदाशयता और महत्ता से परिचित होकर भाव-गद्गद हो उठा है और अविरल अश्रु बहा रहा है। इसके बाद मेरी कल्पना एक दूसरा ही

चित्र मेरे सामने रखती। मैं यह स्वप्न देखने लगता कि मैंने जो नयी ज्योति देखी है, जो दिव्यज्ञान प्राप्त किया है उसके प्रचार के लिए मैं भूखे पेट, नंगे पाँव विश्व-भ्रमण के लिए निकल पड़ा हूँ। मेरे उस अपार त्याग से अत्यन्त प्रभावित होकर विश्वविजयी वीर शान्ति के पक्षपाती बन जाते हैं, सारे संसार में समता का साम्राज्य स्थापित हो जाता है और पोपपन्थियों को रोम त्याग कर ब्राज़ील में बसने को बाध्य होना पड़ता है। मेरे अपार स्वागत के लिए रोम के 'बोर्गेज़ भवन' में एक नृत्योत्सव मनाया जाता है। उक्त 'बोर्गेज़ भवन' को मेरी कल्पना तत्काल के लिए 'कोमों' नामक एक स्वप्नमय झील के निकट मान लेती। उक्त नृत्योत्सव के कवित्वपूर्ण रास-रंगों की कल्पना के बाद मेरी कल्पना धीरे-धीरे अस्पष्ट होती जाती। कुछ समय बाद फिर एक दूसरे ही ढंग की महान् कल्पना रंग-बिरंगे चित्रों का जाल मेरे मानस-पट में तनने लगती। पर प्रत्येक कल्पना का केन्द्र मैं स्वयं होता, और प्रत्येक चित्र में मैं अपने युग के संसार का सबसे अधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति होता।

इसी प्रकार की 'उद्दीप्त' कल्पनाओं में प्रायः तीन मास तक मैं डूबा रहा। उसके बाद धीरे-धीरे मैं उनसे उकताने लगा, और मेरे मन में कल्पित नहीं, बल्कि वास्तविक मनुष्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की प्रबल आकांक्षा जाग पड़ी। इसलिए मैंने अपने आफ़िस के सहकर्मी एन्टन सिटोचकिन के यहाँ नियमित रूप से आना जाना आरम्भ कर दिया। मैंने अपने मन में सोचा कि एक व्यक्ति से विशेष रूप से मिलना सारी मनुष्य-जाति से मिलने के बराबर है। मुझे यह

सोचकर अभी तक आश्चर्य होता है कि कल्पना में समस्त मानवता के प्रति प्रेम-पुलक से व्याकुल भावना का अनुभव करने पर भी वास्तविक क्षेत्र में अधिक से अधिक एक मनुष्य से मैं प्रेम-भाव-प्रदर्शित कर पाता, और एन्टन सिटोचकिन के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति से मिलने पर मेरे हृदय में घृणा का स्रोत दुर्निवार रूप से उमड़ उठता था। यह क्यों! इसका कोई स्पष्ट कारण निर्देशित करने में इस समय मैं असमर्थ हूँ। क्या संसार में सभी 'मानव-प्रेमियों' के वास्तविक जीवन का यही हाल है?

एन्टन सिटोचकिन एक बहुत बड़े मकान की चौथी मंजिल में में रहता था। उसके साथ उसकी दो लड़कियाँ और एक चाची भी रहती थी। उन लड़कियों की आयु उस समय कम से कम तेरह और चौदह वर्ष की थी। जब मैं उन लोगों के साथ बैठ कर चाय पीता, तो वे दोनों बहनें एक-दूसरे के कान में न मालूम क्या फुसफुसाती रहतीं, और बीच-बीच में अकारण खिलखिला उठतीं। मुझे उनकी इस तरह की आदतें क़तई पसन्द नहीं आती थीं। बीच-बीच में एन्टन सिटोचकिन के यहाँ दो-एक अतिथि भी आ जाया करते थे। बहुधा आफ़िसों में काम करने वाले क्लर्क ही होते थे। उन लोगों की जो बातें आपस में हुआ करती थीं वे अधिकतर आफ़िस सम्बन्धी ही होती थीं, जिन्हें सुन-सुनकर मुझे बुख़ार सा आने लगता था। फिर भी मैं दो-तीन घन्टे तक बेवक़ूफ़ों की तरह चुपचाप उन लोगों के बीच में बैठा रहता था; न कभी उनकी बात पर मुस्कराता, न कभी किसी विषय पर अपना मन्तव्य प्रकट करता। इस प्रकार अपनी आत्मा को

अत्यन्त संकुचित और पीड़ित करते हुए मैं अपने 'मानव-प्रेम' के कर्तव्य का पालन करता था !

मेरे परिचित में से एक और व्यक्ति था। उसका नाम सिमोनोव था। वह मेरे स्कूल-जीवन का साथी था। उस समय मेरे स्कूल-जीवन के और भी बहुत से साथी पीटर्सबर्ग में रहते थे, पर मैं किसी से भी विशेष हेल-मेल नहीं रखता था, बल्कि मैंने यहाँ तक उन लोगों से असहयोग कर लिया था कि रास्ते में उन्हें देखता तो अभिवादन तक न करता और मुँह फेर लेता। अपने विद्यार्थी जीवन की कोई भी स्मृति मुझे प्रिय नहीं थी, इसलिए उस जीवन की याद दिलाने वाला कोई भी व्यक्ति मुझे स्वभावतः पसन्द नहीं था। फिर भी मेरे दो-एक सहपाठी बचे थे जिनसे बीच-बीच में किसी न किसी रूप में मेरा सम्बन्ध अभी तक कायम था। उनमें सिमोनोव भी एक था। सिमोनोव में छिछोरेपन का अभाव था, और उसके चरित्र में मैंने एक ऐसी दृढ़ता पाई थी जिसका अन्यान्य विद्यार्थियों में एकदम अभाव था। इसलिए विद्यार्थी-जीवन के बाद भी उससे मेरा सम्बन्ध बहुत दिनों तक स्थायी बना रहा। पर इधर उसने किसी एक सरकारी दफ़्तर में एक ऐसा पद प्राप्त कर लिया था जो मुझसे काफ़ी ऊँचा था। इस कारण वह भी अब मुझसे कुछ कतराने लगा था। पर मैं यह होते हुए भी उसके साथ अपना पूर्ण सम्बन्ध किसी हद तक क़ायम रखे हुए था। वृहस्पतिवार को एन्टन सिटोचकिन के कुछ विशेष अतिथि उससे मिलने आते थे। इसलिए उसदिन मैं उसके यहाँ जाना पसन्द नहीं करता था, और सिमोनोव के यहाँ चला जाता था। पर

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि सिमोनोव के यहाँ जाते हुए अब मेरे मन में उत्साह का लेश भीं नहीं रह गया था। फिर भी मैं उसके यहाँ जाता था, इसका कारण यह था कि बहुत दिनों से जो अभ्यास बन गया था वह सहज में नहीं छूट सकता था। धीरे-धीरे मैं उसके यहाँ जाने का क्रम भी तोड़ने की चेष्टा करने लगा, और बहुत दिनों तक उसके यहाँ नहीं गया।

एक दिन (उस दिन भी वृहस्पतिवार था) न जाने क्या सोच कर सन्ध्या के समय जब मैं अपनी सहज उदासीनता के साथ सिमोनोव के यहाँ पहुँचा, तो उसके यहाँ अपने विद्यार्थी-जीवन के दो और सहपाठियों को बैठे हुए देखा। प्रायः एक वर्ष बाद सिमोनोव से मेरी भेंट हुई थी। पर उसके मुख के भाव से मुझे तत्काल पता लग गया कि इतने दिनों के विछोह से उसके मन में मेरे प्रति प्रेम का भाव तनिक भी वृद्धि को प्राप्त नहीं हुआ है। तीनों सज्जनों में से किसी ने भी मेरी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उन लोगों का इस तरह का रुख देखकर मेरे संकोच, ग्लानि और आश्चर्य की सीमा न रही। स्पष्ट ही वे तीनों मुझे एक साधारण मक्खी से अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझ रहे थे। विद्यार्थी जीवन में भी उन लोगों का मेरे प्रति विशेष सद्भाव नहीं था, पर इस प्रकार की उदासीनता, बल्कि घृणा, उनमें पहले कभी नहीं देखी गयी थी। उनकी इस घृणा का कारण क्या है, इसका अनुमान लगाना मेरे लिए कठिन नहीं था। विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति के बाद कोई प्रतिष्ठित सरकारी पद प्राप्त करने में मैं पूर्णतः असफल रहा, जब कि वे तीनों अच्छी सफलता पा चुके थे।

मेरी सामाजिक स्थिति भी अत्यन्त साधारण थी, मैं निर्धन भी था, और फटे-हाल रहने पर भी बड़ा अभिमानी था। इन सब कारणों से वे लोग स्वभावतः मुझे अत्यन्त अवज्ञा की दृष्टि से देखते थे।

सिमोनोव ने मुझे देखकर एक बार आश्चर्य का सा भाव प्रकट किया, और फिर मुँह फेर लिया। मैं एक कुर्सी पकड़ कर चुपचाप मन मारकर बैठ गया और उन लोगों की बातें सुनता रहा। एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय को लेकर तीनों मित्रों में बड़ी गहरी बातें हो रही थीं। जीर्कोव नामक उन लोगों का एक मित्र, जो कि एक प्रतिष्ठित सैनिक अफसर के पद को प्राप्त हो चुका था, बदली होने के कारण शीघ्र ही पीटर्सबर्ग छोड़ कर किसी सुरक्षित स्थान को जाने वाला था। उसकी विदाई के उपलक्ष में एक शानदार भोज देने की योजना पर तीनों मित्र आपस में परामर्श कर रहे थे। जीर्कोव भी मेरा सहपाठी रह चुका था। पर किसी कारण से बाद में मैं उससे कुढ़ने लगा था, और उससे किसी प्रकार का भी सम्बन्ध रखना मैंने छोड़ दिया था। वास्तव में अपने विद्यार्थी-जीवन में उसे देखकर मेरे मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती थी। यह बात नहीं थी कि वह पढ़ने-लिखने में मुझसे तेज़ रहा हो; इस विषय में वास्तव में वह मुझसे बहुत नीचे था। पर वह बहुत खुशदिल और मिलनसार था, और स्वस्थ तथा सुन्दर दिखाई देता था; इस कारण वह सभी छात्रों का प्रिय-पात्र बना रहता था। पर उसकी बुद्धि इतनी साधारण थी कि परीक्षाओं में उसे सफल होते देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। बाद में इस रहस्य का कारण मुझे मालूम हो गया। उसे एक

बहुत बड़ी जमीन्दारी का उत्तराधिकार प्राप्त हो चुका था, जिसके कारण स्वभावतः उसके निर्धन सहपाठियों के मन में उसके प्रति एक संभ्रम और प्रतिष्ठा का भाव उत्पन्न हो गया था और अध्यापक-गण भी उसके प्रति विशेष रूप से सदय हो उठे थे। इन सब कारणों से जीकॉव का अहंभाव बहुत बढ़ गया था और वह हम लोगों पर अपनी धनाढ्यता की धाक जमाने की चेष्टा करने लगा था। फिर भी उसके स्वभाव में एक ऐसी सरसता थी जो सबको समान रूप से आकर्षित करती। किन्तु मुझ पर उसकी उस सरसता का उलटा प्रभाव पड़ने लगा। कारण यह था कि धनमद के साथ ही उसके स्वभाव में कुछ ऐसी विकृतियाँ आ गयी थीं जो 'सरस' होने पर भी मुझे अत्यन्त घृणित जान पड़ती थीं।

एक बार उसने अपने सहपाठियों से अपने भावी जीवन का कार्य-क्रम वर्णन करते हुए कहा कि वह अपनी जमीन्दारी की सभी सुन्दरी दासियों का धर्म नष्ट करने की इच्छा रखता है, और इस कार्य में उसे कोई बुराई इसलिए नहीं दिखायी देती कि दास-दासियों के शरीर मन और आत्मा पर पूर्णतः उनके मालिकों का ईश्वर-प्रदत्त अधिकार रहता है! उसने साथ ही यह भी घोषित किया कि उसके असामी यदि इस सम्बन्ध में तनिक भी आपत्ति प्रकट करें तो वह कोड़ों की मार से उनके होश ठिकाने लगा देगा। हमारे बहुत से सहपाठियों ने उसकी यह घोषणा सुनकर एक प्रकार के हर्षोल्लास का अनुभव किया और वे तालियाँ पीटने लगे। पर मेरे क्रोध का ठिकाना न रहा। मैंने ज़ोरदार शब्दों में जीकॉव की उस नीच दर्पोक्ति का विरोध

किया। दासियों और दासों के प्रति करुणा के भाव से मैं उतना प्रेरित नहीं हुआ, जितना उसके प्रशंसकों की अत्यन्त घृणित कायरतापूर्ण मनोवृत्ति के कारण मेरे मन में क्रोध का आवेग उमड़ उठा। उस समय मित्रमंडली में मेरी विजय रही, सन्देह नहीं; पर जीकॉव मूर्ख होने पर भी अभिमानी था, इसलिए उसने सारी बात को हँसी में उड़ा देने का प्रयत्न किया। इस प्रकार अन्त में विजय उसी की रही। बाद में कई बार वह इसी ढंग से मेरी बातों की गम्भीरता और बुद्धि की प्रखरता की सारी धाक मिट्टी में मिलाने का प्रयत्न करता रहा है, पर उसके इस प्रयत्न में विद्वेष की मनोवृत्ति की प्रधानता उतनी नहीं रही है, जितनी उसकी खुशमिजाजी की सहज स्वाभाविकता। इस कारण उसके संसर्ग में बार-बार मुझको ही नीचा देखना पड़ता था, जिसका फल यह हुआ कि मैंने उसके साथ से दूर रहना ही श्रेयस्कर समझा। स्कूल-जीवन के बाद भी उसने मेरे साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किये रहने की चेष्टा की थी, पर मैं सदा उससे कतराता रहा। बाद में जब वह अफ़सर के पद को प्राप्त हो गया, तो वह स्वयम् मेरे संसर्ग से बचे रहने की चेष्टा करने लगा। जब कभी रास्ते में वह मुझे दिखायी पड़ता, तो तत्काल मेरी ओर से मुँह फेर लेता और कन्नी काट-कर चला जाता। वह बड़े-बड़े ओहदों के लोगों से हेल-मेल बढ़ाने लगा था, और एक प्रतिष्ठित जनरल की लड़कियों के प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित करने लगा था। मेरे आगे यह बात भी छिपी नहीं थी कि उसका चरित्र नाना रूपों से भ्रष्ट हो चुका है। ऐसा जो ज़ीकॉव था, उसे दावत देने की योजना के सम्बन्ध में मेरे मित्र तद्गत-होकर

बातें कर रहे थे, और ऐसे व्यस्त थे कि मेरा अभिवादन करने की फ़ुर्सत तक किसी को नहीं थी।

सिमोनोव के जो दो मित्र मेरे पहुँचने के पूर्व ही उसके साथ बैठे हुए थे उनमें से एक का नाम फेर्फिचकिन था। वह आधा रूसी और आधा जर्मन था। वह एक नाटे क़द का और बन्दर की सी सूरत का व्यक्ति था, और घोर मूर्ख होने के साथ ही इतना ओछा था कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक बात का मख़ौल उड़ाने में ही बड़प्पन समझता था। स्कूल के दिनों से ही वह मेरा भयंकर शत्रु बन गया था। मज़ा यह था कि मूर्ख और कायर भाँड़ों का-सा जीवन बिताने पर भी वह अपने को अत्यन्त सम्माननीय समझता था, और इसी कारण जीकॉव के समान 'प्रतिष्ठित' व्यक्तियों के साथ हेलमेल बढ़ाए रहना वह अपना परम कर्तव्य समझता था। जीकॉव की चापलूसी में वह भाँड़ों को भी मात कर देता था। पर इस भँड़ैती द्वारा वह अपना स्वार्थ भी सिद्ध करता था। इतनी समझ उसमें थी! वह बीच-बीच में जीकॉव से रुपये उधार लेता रहता था और फिर कभी चुकाने का नाम नहीं लेता था। जीकॉव उसकी इस आदत से परिचित होते हुए भी उसे रुपये देता रहता था—चापलूसी और खुशामद के जादू का प्रभाव ही ऐसा होता है!

दूसरा व्यक्ति जो सिमोनोव के पास आया हुआ था—उसका नाम था त्रुदोलियूबाफ़। वह एक लम्बे क़द का जवान था और सदा गम्भीर बने रहने की चेष्टा किया करता था। सांसारिक सफलता ही उसके जीवन का चरम आदर्श था। जिस व्यक्ति को इस प्रकार की सफलता प्राप्त हो गयी हो, उसे वह परम सम्माननीय समझता था।

जीकॉव के साथ उसने एक दूर का रिश्ता भी खोज निकाला था, जिसके फलस्वरूप मेरे बहुत से सहपाठी उसे भी सम्मान की दृष्टि से देखा करते थे। पर मेरे साथ उसका भी बर्ताव अच्छा नहीं था। मुझे बात-बात में नीचा दिखाने के लिए वह सब समय तत्पर रहता था।

त्रुदोलियूबाफ़ ने कहा—"हम तीनों में से प्रत्येक को सात-सात रूबल (प्रायः चौदह रुपये) देने होंगे। इस हिसाब से इक्कीस रूबल जमा हो जावेंगे। इतनी रक़म से एक बहुत अच्छे भोज का आयोजन हो सकेगा। जीकॉव से कुछ नहीं लिया जायगा, क्योंकि वह हमारा प्रधान अतिथि होगा।"

इस पर फेरफिचकिन जीकॉव के 'महत् गुणों' का बखान करने का अच्छा मौक़ा पाकर बोल उठा—"पर क्या तुम लोग यह समझते हो कि वह अपने हिस्से का रुपया दिये बिना भोज में सम्मिलित होने को राजी होगा? इसमें सन्देह नहीं कि हम लोगों का जी दुखाना वह नहीं चाहेगा, और इस कारण वह नक़द रुपये नहीं देगा। पर कम से कम आधी दर्जन शैम्पेन के बोतलें वह अपनी ओर से अवश्य प्रदान करेगा।"

सिमोनोव, जो कि उस भोज का प्रधान संयोजक जान पड़ता था, बोला—"कुछ भी हो, यह बात पक्की रही कि कल संध्या को हम तीनों मित्र जीकॉव को 'ओतल द पारी' (पैरिस के होटल) में भोज दें।"

मैं तब तक एकदम चुप रह कर उन लोगों की बातें सुन रहा था। न तो उनमें से कोई मेरे साथ एक भी शब्द बोला था, न मैं ही कुछ बोलने के लिए प्रवृत्त था। पर अकस्मात् मेरे भीतर शैतान ने

कुछ मन्त्र मारना शुरू कर दिया। मैं बोल उठा—"क्या जीकॉव को एक फैशनेबुल होटल में दावत देने के लिए केवल इक्कीस रूबल से तुम लोगों का काम चल जायगा? मुझे भी इस योजना में सम्मिलित कर लो। मैं भी अपने हिस्से के सात रूबल दूँगा। इस प्रकार कुल संख्या २८ रूबल तक पहुँच जायगी।"

मैं इस बात का अनुभव भली-भाँति कर रहा था कि मेरे कंठ-स्वर से तीव्र कर्कशता व्यक्त हो रही थी। इतनी देर तक मौन अपमान को मैं विष की घूँटों की तरह पीता चला जा रहा था, और उसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप मेरे मुँह से जो आवाज़ निकली उसका कर्कशा होना स्वाभाविक था।

सिमोनोव ने अत्यन्त आश्चर्य के साथ पूछा—"तुम क्या वास्तव में हमारी योजना में सम्मिलित होना चाहते हो?" पर यह कहते हुए उसने मेरी ओर देखा तक नहीं। अपने प्रति उसकी इस प्रकार की अवज्ञा देखकर मैं और अधिक क्रुद्ध उठा। क्रोध और अपमान की भावना को दबाने की वृथा चेष्टा करते हुए मैंने हकलाते हुए कहा—"इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है? जीकॉव तुम लोगों की तरह मेरा भी तो साथी है! तुम लोगों ने मुझे इस बात की सूचना तक नहीं दी, इससे यदि मैं अपने को अपमानित समझूँ, तो यह कुछ अस्वाभाविक बात न होगी।"

फेरफ़िचकिन बोल उठा—"तुम किस बिल में छिपे रहते हो, इस बात का पता हम में से किसी को भी नहीं था।"

त्रुदोलियूवाफ़ ने मुझे पीड़ित करने का सुअवसर देखकर कहा—"इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि तुम जीर्काव के मित्र हो या नहीं, इसमें विशेष सन्देह है।"

अपने आवेग को रोके रखना मेरे लिये कठिन हो गया। पहले से भी अधिक हकलाते हुए मैंने उत्तर दिया—"मैं – मैं – जीर्काव मेरा मित्र है या नहीं, इस सम्बन्ध में विचार करने का अधिकार किसी का है, यह मैं नहीं मानता। जीर्काव के साथ मेरा सद्भाव न रहने के कारण ही मैं विशेष रूप से उसकी विदाई के भोज में सम्मिलित होने की इच्छा रखता हूँ।"

त्रुदोलियूवाफ़ ने व्यंग कसते हुए कहा—"ओह, यह बात है! हम लोगों को क्या पता था कि तुम इतने सदाशय हो?"

सिमोनोव ने अपना अन्तिम निर्णय प्रकट करते हुए कहा—"अच्छी बात है, तुम्हारी बात मान ली गयी। तो कल 'ओतल द पारी' में पाँच बजे संध्या के समय उपस्थित हो जाना। देखना, भूलना मत!"

इस पर फेरफिचकिन दुष्टतापूर्वक बोल उठा—"और अपने हिस्से का रुपया भी साथ में अवश्य ले आना! भूलना नहीं!" यह कहकर उसने सिमोनोव की ओर संकेतपूर्ण कटाक्ष से देखा। वह मेरी आर्थिक स्थिति से भली-भाँति परिचित था, इसी कारण उसने इस प्रकार का ताना कसा था। वह इससे भी आगे बढ़ता, पर सिमोनोव ने संकेत से उसे मना कर दिया।

त्रुदोलियूबाफ़ ने अपनी कुर्सी से उठते हुए कहा—"ठीक है! यदि वह (उसका आशय मुझ से था) आना चाहता है, तो आवे! हमें कोई आपत्ति नहीं है।"

फेरफिचकिन भी उठ खड़ा हुआ, और खड़े होते हुए बोला—"पर यह कोई सार्वजनिक पार्टी तो है नहीं, यह तो एक 'प्राइवेट' योजना है।"

जब फेरफिचकिन जाने लगा, तो उसने न मेरी ओर देखा, न अभिवादन किया। त्रुदोलियूबाफ़ ने मेरी ओर देखे बिना ही अभिवादन के बतौर हाथ ज़रा-सा ऊपर उठा दिया। पर सिमोनोव का रास्ता मैंने रोक-सा लिया था, इसलिए उसे विवश होकर मेरे सामने खड़े रहना पड़ा, जिससे उसे कोई सुख नहीं मिल रहा था। उसके चेहरे से यह बात स्पष्ट व्यक्त हो रही थी। मेरे सामने होने पर भी वह कनखियों से मुझे देख रहा था। उसने कहा—"हुम्! तो ठीक है, तुम कल आना। पर हाँ, एक बात है, यदि तुम अपने हिस्से का रुपया अभी दे दो तो अच्छा है। इससे तुम्हारे आने की बात निश्चित हो जायगी; क्यों?"

उसकी इस तरह की बात से मैं जल उठा। पर तत्काल मुझे यह बात याद आ गयी कि कई दिन हो गये मैंने उससे पन्द्रह रूबल उधार लिये थे, उन्हें अभी तक मैं चुका नहीं पाया था। इस कारण मैंने कुछ शान्त होने की चेष्टा करते हुए कहा—"ठीक है। पर तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैं जब घर से निकला था, तो मुझे तुम्हारी

योजना का कोई आभास हवा से भी मिल सकना सम्भव नहीं था। इसलिए मैं अपने साथ रुपया लेकर नहीं आया।"

"अच्छा, अच्छा! कोई बात नहीं, कल ही सही! मैंने यों ही कहा था। पर याद रखना, भूलना— !"

बात पूरी किये बिना ही सिमोनोव बेचैनी के साथ कमरे में टहलने लगा। कुछ देर बाद बोला—"नहीं! अर्थात् ठीक ही है! कुछ भी हो, इस समय मुझे कहीं जाना है।"

मेरा दबा हुआ क्रोध फिर उभड़ने लगा था। मैंने कुछ तेज़ी के साथ कहा—"तुमने पहले मुझे इस बात की सूचना क्यों नहीं दी?" यह कहते हुए मैंने अपना टोप उठा लिया।

पर वह मेरी बात सुनी-अनसुनी करके बोला—"मुझे पास ही एक जगह किसी ज़रूरी काम से जाना है।"

जब मैं सीढ़ियों से होकर नीचे चलने लगा तो उसने फिर एक बार कहा—"तो कल पाँच बजे न भूलना।" उसके कंठ-स्वर से मालूम हो रहा था कि वह मेरे चले जाने से प्रसन्न हो उठा है।

मैंने मन-ही-मन कहा—"भाड़ में जावें मेरे ये सब साथी! पता नहीं, मैं किस मूर्खता के फेर में पड़कर इन लोगों के बीच आ पहुँचा। और जीर्कोव की विदाई के भोज से मेरा क्या वास्ता था? वह मूर्ख मेरा क्या लगता है? अभी तक जो कुछ ग़लती मैंने की सो की, अब भलाई इसी बात में है कि इस विदाई के प्रहसन में सम्मिलित होने को न जाऊँ। कल ही सिमोनोव को मैं अपने विचार-परिवर्तन की सूचना दे दूँगा।"

पर यह सोचने पर भी मैं जानता था कि मैं अवश्य उस दावत में शरीक होऊँगा। ज्यों-ज्यों मुझे वहाँ जाने की बात अरुचिकर और अशोभन जान पड़ती थी, त्यों-त्यों मेरा हठ उस भोज में सम्मिलित होने के लिए बढ़ता जाता था। पर एक भयंकर कठिनाई मेरे सामने उपस्थित थी। वह यह कि मेरे पास एक पैसा भी फालतू नहीं था। इसमें सन्देह नहीं कि नौ रूबल मैंने किसी उपाय से बचाकर अपने पास रख छोड़े थे। पर उनमें से सात रूबल पर मेरा अपना कोई अधिकार न रह गया था, क्योंकि दूसरे ही दिन वह रक़म मुझे अपने नौकर एपोलन को वेतन के रूप में देनी थी। उसे नियमित रूप से निश्चित दिन में वेतन न मिलने पर वह दुष्टात्मा परोक्ष उपायों से मेरे प्राणों को संकट में डाल देता था, इसलिए इस सम्बन्ध में एक दिन के लिए भी टालमटोल करना मेरे लिए असम्भव था। पर मैं जानता था कि ज़ीर्काव को दिये जानेवाले भोज में सम्मिलित होने के लिए मुझे असम्भव को भी सम्भव करना पड़ेगा और अपने हठी नौकर को वेतन न देकर अपने प्राणों को संकट में डालना ही होगा।

उस दिन रात में मैं भयंकर स्वप्न देखता रहा। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी, क्योंकि दिन में अपने जिन 'मित्रों' के बीच में मुझे बैठना पड़ा था उनके संसर्ग से मेरे मन में अपने विद्यार्थी-जीवन की दुःखद स्मृतियाँ जाग उठी थीं। उस स्कूल में मेरे कुछ दूर के सम्बन्धियों ने मेरी अनाथ अवस्था पर तरस खाकर मुझे भेजा था। उन कृपाशील सम्बन्धियों ने मेरे हित के लिए बचपन में मुझे इस क़दर डाँट-फटकार बतायी थी कि मैं छोटी अवस्था से ही अत्यन्त भीरु

कायर, गम्भीर-प्रकृति और उदास बन गया था। स्कूल में मेरे प्रायः सभी सहपाठी मेरा दब्बूपन देखकर मेरा मज़ाक उड़ाया करते थे। उनके निष्ठुरतापूर्ण व्यंगबाणों का सहन करना मेरे लिए असम्भव था। फल यह हुआ कि अपने किसी भी सहपाठी के साथ मेरी हार्दिक घनिष्ठता नहीं हो पायी, और मैं एक एकान्त-प्रिय, घमंडी और अत्यधिक भावुक-प्रकृति व्यक्ति बन गया। पता नहीं मेरे सहपाठियों को मुझे प्रति क्षण तंग करते रहने में क्या सुख प्राप्त होता था। वे कभी मेरी मुखाकृति का और कभी मेरी प्रकृति का मज़ाक उड़ाते। मज़े की बात यह है कि मज़ाक उड़ानेवालों में से बहुतों की मुखाकृति मुझसे कई गुना अधिक निकृष्ट थी। इसके अतिरिक्त मैं बुद्धि में उन लोगों से बहुत आगे बढ़ा हुआ था। स्कूल-पाठ्य पुस्तकों का ज्ञान मेरे लिए अत्यन्त तुच्छ था। मैं अधिकतर स्कूल से कोई सम्बन्ध न रखनेवाली अत्यन्त गहन विषयों की पुस्तकों के अध्ययन में रत रहता था, और साथ ही स्कूल की परीक्षाओं में भी सबसे आगे रहता था। मेरी बुद्धि की इस विशेषता का प्रभाव मेरी हँसी उड़ाने वाले सहपाठियों पर अवश्य पड़ा, पर इसी कारण उनका विद्वेष भी मेरे प्रति और अधिक बढ़ गया। एक भी ऐसा साथी मुझे कभी नहीं मिला जो मेरे प्रति वास्तव में सहानुभूतिशील हो। अपने जीवन के इस भयंकर अभाव के कारण मेरी आत्मा कराह उठी। एक बार एक साथी अवश्य मुझे ऐसा मिला था जो कुछ समय के लिए मेरे प्रति सहृदय हो उठा था। पर जो व्यक्ति जीवन में स्वयम् दलित, अपमानित और प्रताड़ित रहता है वह अपने प्रति विनम्र व्यक्तियों के साथ भयंकर रूप से

अत्याचार करने लगता है। मैंने भी अपने प्रति श्रद्धालु साथी के साथ अन्यायमूलक बर्ताव करना आरम्भ कर दिया। मैं बात-बात पर उस पर अपना रौब ग़ालिब करने की चेष्टा किया करता, और यह चाहता था कि वह एक दास की तरह मेरे संकेतों पर चलता रहे। मैंने उसके मन में निश्चित रूप से यह धारणा जमा दी कि यदि वह मेरा साथ चाहता है, तो उसे दूसरे किसी भी सहपाठी से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना होगा। फल यह हुआ कि मेरी इस अत्यन्त ऐकान्तिक मित्रता से वह घबरा उठा। फिर भी उसने मेरे लिए सर्वस्व त्याग दिया और पूर्ण रूप से मेरा साथ देने लगा। पर मैंने जब देखा कि वह तन-मन और आत्मा से मेरा पूर्ण दासत्व स्वीकार कर चुका है, तो उससे मुझे घृणा हो गयी, और मैंने स्वयम् उसका साथ छोड़ दिया। पर मेरे दूसरे सहपाठी उसकी तरह विनम्र और विनयी नहीं थे, यह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ। इसलिए मैं उन लोगों से सदा घबराता रहा हूँ, और उनसे बचने की चेष्टा करता रहा हूँ। पर न जाने किस मूर्खता के फेर में पड़कर मैं सिमोनोव के साथ सम्बन्ध स्थापित किये रहा।

कुछ भी हो, दूसरे दिन सुबह मैं अत्यन्त उत्तेजित मानसिक अवस्था में बिस्तर से उठा। मुझे ऐसा जान पड़ता था जैसे इस साधारण सी बात को लेकर मेरे जीवन में एक अत्यन्त गम्भीर घटना घटनेवाली है। मेरा यह स्वभाव बन गया था कि मुझसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई तुच्छ से तुच्छ घटना मुझे अत्याधिक प्रभावित करती थी, और मेरे मन में यह भ्रमपूर्ण धारणा उत्पन्न कर देती

थी कि मेरे जीवन में उसके कारण महत्वपूर्ण परिवर्तन आने वाला है।

उसी चिन्ता की अवस्था में ही मैं आफिस गया। पर वहाँ काम में तनिक भी जी नहीं लगा, और नियत समय से दो घंटा पहले ही मैं घर चला आया। उसके बाद भोज में सम्मिलित होने की तैयारी में मैं अपने मन को स्थिर रखने की चेष्टा करने लगा। मैंने मन-ही मन-कहा—"और चाहे कुछ भी हो, पर एक बात के प्रति मुझे विशेष ध्यान देना होगा। वह यह कि मुझे किसी भी हालत में दूसरों से पहले नहीं पहुँचना चाहिए, नहीं तो वे लोग सोचेंगे कि मैं इस सम्बन्ध में बहुत उत्सुक हूँ।" इसके अतिरिक्त और भी किन-किन बातों के सम्बन्ध में मुझे सावधान रहना होगा, जब मैं यह सोचने की चेष्टा करने लगा, तो सैकड़ों बातें मेरे मस्तिष्क में उत्पन्न होने लगीं, जिनके कारण मैं इतना अधिक चिन्ता-विकल हो उठा कि मुझे मूर्छा सी आने लगी। जब मैं कुछ सँभला तो मैंने अपने हाथ से अपने जूते साफ़ किये, क्योंकि मेरा हठधर्मी नौकर एपोलन कभी दूसरी बार जूता साफ़ करने को राजी न होगा, यह मैं निश्चित रूप से जानता था। इसके बाद मैंने अपने सब कपड़े टटोले। पर एक भी 'सूट' मुझे ऐसी नहीं मिला, जो साफ़-सुथरा हो और ठीक तरह से तह करके रक्खी हो। एक 'पैन्ट' मैंने ऐसा निकाला जो दूसरे सब पैन्टों से अच्छा था, पर उसमें एक स्थान में पीले रंग का एक बहुत बड़ा दाग़ दिखाई दिया। मैंने सोचा कि मेरे आत्मसम्मान का तीन-चौथाई भाग केवल उसी एक दाग़ के कारण जाता रहेगा। फिर भी मैंने अपने मन को हर तरह समझाने

की चेष्टा करते हुए अपने-आप से कहा—"ये सब बेकार की बातें हैं। मुझे इस समय भावुकता की अवज्ञा करके वास्तविकता की ओर ध्यान देना होगा।" पर इस तरह मन को तसल्ली देने का प्रभाव एकदम विफल सिद्ध हो रहा था, और मेरा चित्त बहुत ही खिन्न और मष्तिक अत्यन्त उत्तेजित हो उठा था।

मैं अपनी मानसिक आँखों के आगे भोज के सारे दृश्य का चित्र अंकित करते हुए यह कल्पना करने लगा कि 'गुंडा' ज़ीर्कोव अपने 'बड़प्पन' के बर्ताव से किस तरह नीचा दिखाने का प्रयास करेगा, 'मूर्ख' त्रुदोलियूबाफ़ किस प्रकार घृणा-भरी दृष्टि से मुझे देखेगा, 'ख़ुशामदी भाँड़' फेरफिचकिन किस प्रकार अपमानजनक परिहास से मुझे मार्मिक कष्ट पहुँचाना चाहेगा, और सिमोनोव मेरे घमंडी स्वभाव के कारण मुझे देखकर किस ढंग से मुँह बिचकायेगा।

मैं भली-भाँति जानता था कि मेरे जाने से कोई प्रसन्न नहीं होगा, क्योंकि मैं उन लोगों के रंग में भंग उत्पन्न करने के सिवा और कुछ नहीं कर सकता था। पर न जाने से मेरे स्वभाव की कायरता सिद्ध होगी, यह सोचकर मैं अपने निश्चय से हटना नहीं चाहता था। किस दैवी-उपाय से मैं उपस्थित मंडली में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनने में समर्थ हो सकूँगा, किस अलौकिक शक्ति के आकर्षण से वे लोग मेरी महत्ता स्वीकार करके मेरा सच्चा आदर करने लगेंगे, इस उद्भ्रान्त कल्पना में कुछ समय बीत गया। मैं मन-ही-मन यह काल्पनिक चित्र अंकित करने लगा कि ज़ीर्कोव मेरे महत् गुणों का परिचय अकस्मात् पाकर, मेरे प्रति सद्धा के भार से झुक गया है;

और परम प्रेम से मुझसे मिलते हुए कह रहा है—"भाई, इतने दिनों तक मैंने तुम्हें नहीं पहचाना। इसके लिए हार्दिक क्षमा चाहता हूँ। तुम वास्तव में अत्यन्त महान् और आदर्श पुरुष हो।" मैं शैम्पेन की घूँट पीते हुए उसे क्षमा कर देता हूँ, और उसके स्वास्थ्य की शुभ-कामना करता हूँ। ज़ीर्काव की देखा-देखी मेरे दूसरे सहपाठी भी मुझे वास्तविक आदर की दृष्टि से देखने लगते हैं और अपने पिछले व्यवहार के लिए पश्चात्ताप प्रकट करते हैं। मैं उदार-चित्त होकर उन सबकी ओर सहज क्षमा, करुणा और स्नेह की दृष्टि से देखते हुए मन्द-मन्द मुसकराता जाता हूँ। इस तरह की स्वप्न-माया में मैं कुछ समय के लिए इस तरह निमग्न हो गया कि मेरी आँखों से सचमुच आँसू उमड़ आये थे।

पर मैं जानता था कि इस प्रकार की अवास्तविक कल्पना में डूबे रहने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि जिस वास्तविकता का सामना मुझे शाम को करना होगा, यह बात भी मुझसे छिपी नहीं थी। बाहर बर्फ़ गिर रही थी। मैं अपने भीतर अत्यन्त निष्ठुर पीड़ा का अनुभव करते हुए शून्य दृष्टि से खिड़की के बाहर देखने लगा, और आन्तरिक मन से भगवान से यह प्रार्थना करने लगा कि आज की संध्या किसी प्रकार बहुत जल्दी कट जाय।

अन्त में मेरी बरसों से जंग खायी हुई पुरानी दीवार-घड़ी में फटी आवाज़ से पाँच का घंटा बजा। मैं टोप उठाकर हड़बड़ाता हुआ उठा। मेरा मूर्ख और दुष्ट नौकर एपोलन सुबह से ही इस उद्देश्य से मेरे क़मरे के बाहर धरना दिये हुए था कि उसका मासिक वेतन

मिल जाय। पर दुष्टतावश एक शब्द भी उसने इस सम्बन्ध में अपने मुँह से नहीं निकाला था। उसका चुप रहना मुझे सबसे अधिक कष्ट पहुँचाता है, इस बात से वह भली-भाँति परिचित था और इसी कारण समय-असमय अपने इस भयंकर निःशब्द अस्त्र का उपयोग करता रहता था। मैं उससे आँख बचाकर बाहर चला गया। एक किराये की गाड़ी में सवार होकर मैं होटल चला गया।

५

यद्यपि मैं अपनी तरफ़ से काफ़ी देर करके गया था, फिर भी मुझे यह भय था कि सबसे पहले मैं ही पहुँचूँगा और हुआ भी यही। इससे भी अधिक कष्ट मुझे इस बात से पहुँचा कि निश्चित कमरा ढूँढ़ने में मुझे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। तिसपर मज़ा यह कि अभी तक टेबिल सजाया तक नहीं गया था। केवल यही नहीं, सबसे अधिक मार्मिक पीड़ा पहुँचाने वाली जो बात मुझे मालूम हुई वह यह थी कि मेरे 'मित्रों' ने मेरे पीछे भोज का समय पाँच बजे के बदले छः बजे नियत कर दिया। इस परिवर्तन के सम्बन्ध में मुझे सूचित करने की कोई भी आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी थी। क्या यह जान-बूझ कर मेरा अपमान करना नहीं था? क्रोध और आत्मग्लानि की भावना को दबाने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए मैं एक कुर्सी पर बैठे-बैठे काँपने लगा। 'वेटर' टेबिल सजाने के काम में जुट गया था, जिससे मेरी बेचैनी और अधिक बढ़ रही थी, क्योंकि मैं कुछ समय के लिए एकान्त में अपने अपमान के सम्बन्ध में चिन्तन करना चाहता था।

जब छः बजने का समय निकट आया तो 'वेटर' मोम-बत्तियाँ जलाने के लिए ले आया। यद्यपि अँधेरा बहुत पहले ही हो चला था, और सभी कमरों में काफ़ी देर पहले से बत्तियाँ जलने लगी थीं, तथापि जिस कमरे में मैं बैठा था वहाँ प्रकाश करने की कोई आवश्यकता अभी तक 'ब्वाय' ने नहीं समझी थी। बगल वाले कमरे में बड़े ज़ोरों से हास्यालाप चल रहा था। वहाँ से कुछ महिलाओं का भी कंठ-स्वर सुनायी देता था। बीच-बीच में वे लोग फ्रेंच भाषा में बातें करते थे। मैं अत्यन्त अरुचि के साथ उनकी वे सब बातें सुन रहा था। कमरे में अकेले बैठे-बैठे मैं इस क़दर उत्यक्त हो उठा था क जब अन्त में 'साथी' लोग हँसते-बोलते हुए वहाँ पहुँचे तो क्रोध से जला हुआ होने पर भी उस समय मैंने उन लोगों को अपने त्राणकर्ता के रूप में देखा।

ज़ीर्कोव उन लोगों के नेता के रूप में सबके आगे था। ज्योंही उन लोगों ने कमरे में मुझे बैठा हुआ पाया, त्योंही सबका हास्यालाप स्तब्ध हो गया। ज़ीर्कोव ने मेरे प्रति अपनी घृणा का भाव दबाने की चेष्टा करते हुए बड़े नखरे के साथ मेरे पास आकर अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया। मेरी धारणा थी कि वह सदा की तरह इस बार भी आते ही मेरा मज़ाक उड़ाना शुरू कर देगा, पर उसकी शिष्टतापूर्ण गम्भीर मुद्रा देखकर मैं चकित रह गया। पर उसके इस व्यवहार से मुझे प्रसन्नता नहीं हुई। मैंने सोचा—'वह अपने को मेरी सतह से इतना ऊँचा उठा हुआ समझता है कि पिछले दिनों की तरह मेरे

प्रति व्यंग कसने में भी अपना अपमान समझता है। इसीलिए वह इस प्रकार बड़प्पन का भाव दिखा रहा है !'

कुछ क्षण तक मैं काठ के उल्लू की तरह उसकी ओर देखता रहा। उसने बड़े नाज़ के साथ अत्यन्त धीर और शान्त भाव से कहा—"मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुमने इस भोज में हम लोगों का साथ देने की इच्छा प्रकट की है। तुमने आज-कल हम लोगों से मिलना-जुलना एक प्रकार से छोड़-सा दिया है। यह ठीक नहीं है, हम लोगों को तुम विचित्र जीवों के रूप में देखते हो। पर वास्तव में हम उतने विचित्र नहीं हैं जितना कि तुम समझते हो। कुछ भी हो, आज बहुत दिनों बाद तुमसे भेंट होने के कारण मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

मैं चुप रहा। त्रुदोलियूबाफ़ ने मुझसे पूछा—"क्या तुम बहुत देर से हम लोगों का इन्तज़ार कर रहे थे?"

"हाँ! मैं ठीक पाँच बजे यहाँ पहुँच गया था, क्योंकि मुझे यही समय बताया गया था।" बहुत देर तक मौन रहने के बाद मैं बोला था, और मेरे न चाहने पर भी मेरे कंठस्वर से मेरा दबा हुआ क्रोध फट पड़ने की सूचना दे रहा था।

त्रुदोलियूबाफ़ स्पष्ट ही मेरी परेशानी से अवगत होकर अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। उसने हर्षोत्फुल भाव से सिमोनोव से पूछा—"क्या सचमुच उसे यह सूचना नहीं दी गयी थी कि भोज का समय बदल दिया गया है?"

सिमोनोव ने खेद का लेश भी प्रकट किये बिना उत्तर दिया—“नहीं, मुझे स्मरण नहीं रहा।” यह कहकर वह इस सम्बन्ध में परम उदासीनता का भाव दिखाते हुए 'डिनर' के लिए 'आर्डर' देने को चला गया।

ज़ीर्कोव सहसा ठहाका मार कर हँस पड़ा, और अपने असली रूप में आ गया। बोला—“तो तुम्हें यहाँ एक घंटा व्यर्थ में बैठे रहना पड़ा है! भाँड़ फेरफिचकिन भी अपने 'प्रभु' को हँसते देखकर उसके अनुकरण में फटी आवाज़ में 'खिः खिः खिः' करके हँस उठा। मेरा क्रोध उबल उठा। मैंने गम्भीर गर्जना के साथ कहा, “इसमें हँसने की कोई बात नहीं है, क्योंकि इसके लिए दोषी मैं नहीं हूँ। मुझे तुम लोगों ने ग़लत सूचना दी है। यह घोर नीचता का व्यवहार मेरे साथ किया गया है।”

“ठीक है, इस व्यवहार से निश्चय ही तुम अत्यन्त अपमानित हुए हो, तुम्हारे चेहरे से यह बात स्पष्ट प्रकट हो रही है।” यह कह कर वह दुष्टतापूर्ण व्यंग के साथ मुस्कराने लगा।

फेरफिचकिन बोला—“यदि कोई व्यक्ति मेरे साथ इस प्रकार का बर्ताव करता, तो मैं—”

“मैं जानता हूँ, तुम ऐसी दशा में क्या करते। तुम किसी की प्रतीक्षा किये बिना ही 'ब्वाय' से अपने लिए खाना मँगा लेते।”

मैंने उत्यक्त होकर कहा—“मैं भी ऐसा ही कर सकता था, और इसके लिए किसी की आज्ञा लेने की आवश्यकता मुझे नहीं थी। पर मैंने क्यों ऐसा नहीं किया, इसका कारण—”

इतने में सिमोनोव आकर बीच ही में मेरी बात काटते हुए बोला—"अच्छा, हो गया; अब भोजन आ रहा है, अब सब लोग अपनी-अपनी 'सीट' पर बैठकर तैयार हो जायँ।" इसके बाद मुझे लक्ष्य करते हुए उसने कहा—"तुम्हारा पता मुझे मालूम नहीं था, इसलिए मैं सूचित न कर सका।" पर यह कहते हुए उसने मेरी ओर देखा तक नहीं। मुझे ऐसा लगा कि मुझसे वह किसी विशेष कारण से असन्तुष्ट है। उसके मन के भीतर की असली बात जानने के लिए मैं अत्यन्त उत्सुक हो उठा, और मैंने निश्चय किया कि किसी न किसी उपाय से उसके भीतर की बात बाहर निकाल कर ही छोड़ूँगा।

जब सब लोग भोजन के लिए अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये, तो ज़ीर्कोव ने मेरी दयनीय दशा देखकर—मुझे प्रसन्न करने के इरादे से मुझसे पूछा—"क्या तुम किसी सरकारी नौकरी पर हो ?"

मेरे मन की अवस्था इस हद तक उत्तेजित हो उठी थी कि उसका वह साधारण प्रश्न मुझे विष बुझे बाण की तरह लगा। मैंने मन-ही-मन कहा—"शराब की एक बोतल उठाकर यदि मैं इस दुष्ट ज़ीर्कोव के सिर पर दे मारूं तो उसे मालूम होगा कि मैं किस नौकरी पर हूँ !" पर प्रकट रूप से मैंने उत्तर दिया कि मैं अमुक विभाग में काम करता हूँ।

"तुम पहले जिस नौकरी पर काम करते थे उसे छोड़ क्यों दिया।"

मैंने प्रायः झिड़क कर कहा—"क्यों छोड़ दिया ? मेरी इच्छा यही थी, इसलिए छोड़ दिया !"

इस पर फेरफिचकिन फिर एक बार 'खिः खिः' करके हँस उठा, और सिमोनोव कटु व्यंग की दृष्टि से मुझे देखने लगा। त्रुदोलियूबाफ़ का यह हाल था कि वह मेरी बात सुनकर स्तब्ध और विभ्रान्त रह गया, और जिस छुरी और काँटे से वह खाना खा रहा था, वे कुछ देर तक ऊपर को मुँह करके इस तरह स्थिर रह गये, जैसे वे भी आश्चर्य का भाव प्रकट करना चाहते हों।

ज़ीकॉव केवल अपना मुँह विचका कर रह गया। कुछ देर बाद उसने फिर प्रश्न किया—"तुम्हें इस समय क्या मिलता है?"

"मुझे क्या मिलता है?"

"हाँ, मेरा मतलब तुम्हारे वेतन से है।"

"क्या यहाँ कोई जाँच-कमिटी बैठी हुई है कि मुझे अपने सम्बन्ध में पूरा बयान देना होगा?" मन-ही-मन मैंने यह प्रश्न किया, पर प्रकट में उसे बता दिया कि मैं कितना वेतन पाता हूँ। उत्तर देते हुए मेरा चेहरा क्रोध, लज्जा और ग्लानि से निश्चय ही लाल हो गया होगा।

ज़ीकॉव ने व्यंग-भरी मुसकान को दबाने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए कहा—"तब तो तुम्हें बहुत ही कम मिलता है।"

फेरफिचकिन ने भी ताना कसते हुए कहा—"इतने कम वेतन पर आज की तरह प्रतिदिन नामी होटलों में भोजन नहीं किया जा सकता!"

त्रुदोलियूबाफ़ बोल उठा—"तब तो तुम्हारी वर्तमान दशा बहुत दयनीय जान पड़ती है।"

ज़ीकॉव ने मेरे कपड़ों की अत्यन्त हीन दशा पर एक सरसरी दृष्टि फेरते हुए कहा—"तुम्हारा स्वास्थ्य भी मुझे वहुत गिरा हुआ मालूम होता है।"

फेरफिचकिन बोला—"अब बस कीजिये! बेचारा बहुत बनाया जा चुका है!"

"आपकी हैसियत ही क्या है, जनाब, जो आप मुझे बनावें! मैं इस होटल में अपने पैसे खर्च करके खाना खा रहा हूँ, किसी दूसरे की कृपा प्राप्त करके नहीं, समझे फेरफिचकिन साहब?"

मेरी बात सुनकर फेरफिचकिन आग-बबूला हो उठा। तमक कर बोला—"क्या कहते हो? तुम क्या यह जताना चाहते हो कि मैं किसी दूसरे के पैसों से खाना खा रहा हूँ? ज़रा होश से बात करो।"

यह जानकर कि मैंने फेरफिचकिन के ठीक स्थान पर आघात किया है, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने कहा—"कुछ भी हो, इस तरह की बातों से कोई लाभ नहीं है। हम लोग किसी दूसरे विषय पर बातें करें।"

"क्यों नहीं, तुम चाहते हो कि तुम्हें अपनी बौद्धिकता का रौब गाँठने का अवसर दिया जाय!"

"वर्तमान मंडली में बौद्धिकता की बातें मूर्खतापूर्ण सिद्ध होंगी इसलिए मैं ऐसी भूल नहीं करना चाहता।"

"क्या हम लोग तुम्हारे क़लम-घिस्सू साथियों से भी गये बीते हैं!"

"ओह, यह व्यर्थ की बकवाद अब बन्द होनी चाहिए!" ज़ीकॉव ने रौब के साथ यह घोषित करते हुए सिमोनोव की ओर देखा।

सिमोनोव ने कहा—"यह सब कैसी मूर्खता की बातें हो रही हैं!"

इस पर त्रुदोलियूबाफ़ को अपनी नीचता प्रकट करने का अच्छा मौका मिल गया। वह बोला—"तुम ठीक कहते हो! हम लोग यहाँ अपने एक परम प्रिय मित्र की विदायी के अवसर पर दो-एक घंटा प्रेम तथा मित्रतापूर्ण वार्तालाप में बिताने के लिए इकट्ठा हुए हैं, और यह महाशय (यह कहते हुए उसने मेरी ओर संकेत किया) यहाँ सब से उलझने और झगड़ने के लिए कमर कसकर आये हुए हैं। देखिये महाशयजी, हम लोगों ने आपको निमन्त्रित नहीं किया था, यह आप जानते हैं। आपने स्वयम् इस भोज में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की थी। इसलिए आपसे प्रार्थना की जाती है कि आप चुपचाप बैठे रहें, और हम लोगों की शान्ति और सुख में कोई बाधा न डालें।"

ज़ीर्कोव ने कहा—"अच्छा-अच्छा, अब बस करो। इस विषय को छोड़ो, मैं तुम लोगों को अपनी एक आप-बीती सुनाता हूँ। क़िस्सा बड़ा रोचक है, तीन वर्ष पहले की बात है। मैं एक ऐसे चक्कर में फँस गया था कि मेरा विवाह होते-होते रह गया।" यह कहकर वह 'रोमान्टिक' घटनाओं से पूर्ण एक प्रेम-कथा सुनाने लगा, जिसका नायक वह स्वयम् था। एक सुन्दरी लड़की बड़े-बड़े उच्च पदाधिकारियों के प्रेम-निवेदन को ठुकराकर किस प्रकार उस पर मर मिटी, इसका वर्णन काफ़ी नमक-मिर्च मिलाकर उसने किया। क़िस्सा सुनते हुए ज़ीर्कोव के ख़ुशामदी साथी बात-बात पर हर्षध्वनि करते जाते थे। मेरे अस्तित्व की बात ही वे लोग एकदम भूल गये। मैं अपने

को दलित और अपमानित अनुभव करता हुआ मुँह फुलाए चुपचाप बैठा रहा।

मैं मन-ही-मन कहने लगा—"उफ़! कैसे घृणित और मूर्ख लोगों की मंडली में मैं आ फँसा हूँ! पर मज़ा यह है कि इस समय वास्तव में मूर्ख मैं बना हुआ हूँ! इस भाँड़ फेरफिचकिन को तो देखो। उसकी नीचताओं के प्रति मैं बराबर क्षमाशील रहा हूँ, इस बात का तनिक भी ध्यान उसे नहीं है, और आज सब से अधिक मुझे उसीने बनाया है। खैर। मैं देख लूँगा। पर क्या ये सब लंठ वास्तव में यह समझते हैं कि मुझे अपने साथ भोज में सम्मिलित करके उन्होंने मुझ पर महान कृपा की है? क्या यह समझने की बुद्धि उनमें नहीं है कि उनके साथ बैठकर मैं उनको सम्मानित कर रहा हूँ, न कि वे मुझे। ठीक है, मेरा वेतन बहुत कम है, और मैं बहुत मामूली कपड़े पहने हूँ (इस नीच ज़ीर्काव ने मेरे पतलून का पीला दाग़ अवश्य ही देख लिया होगा!) पर इससे क्या हुआ? विद्या और बुद्धि में तो मैं इन सबसे आगे बढ़ा हुआ हूँ। तब क्यों ये लोग मुझे इस तरह बनाने का साहस करते हैं? कुछ भी हो, मुझे चाहिए कि इन घृणित जीवों की एकदम अवज्ञा करके इसी दम इस स्थान से उठकर बिना एक शब्द भी किसीसे बोले चल दूँ। सम्भव है, मेरे इस व्यवहार से अपने को अपमानित समझकर ज़ीर्काव कल मुझे द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारे। कमीने कहीं के! हाँ, मैंने अपने हिस्से के सात रूबल अभी तक नहीं चुकाये हैं। मैं यदि न भी चुकाऊँ, तो उतने से इन दुष्टों का कुछ बनता बिगड़ता नहीं। फिर भी—जहन्नुम में जावें ये

सब ! मैं सात रूबल की कुछ परवा नहीं करता। मैं अभी चलता हूँ।"

पर मन में इस तरह की बातें सोचते हुए भी, प्रत्यक्ष रूप से मैं अपने स्थान पर डटा ही रहा, और 'शेरी' तथा 'शैम्पेन' के गिलास पर गिलास खाली करता चला गया। मुझे इतनी शराब पीने की आदत नहीं थी। फल यह हुआ कि मेरा सिर चक्कर खाने लगा, और अपने साथियों के प्रति मेरे क्रोध की मात्रा बढ़ती चली गयी। सहसा मुझे यह झख सवार हुई कि एक बार उनमें से प्रत्येक को कड़े से कड़े शब्दों में अपमानित करके उठकर चला जाऊँ। मैं उनकी ओर ग़ौर से देखने लगा। पर वे अपनी बातों में इतने अधिक व्यस्त दिखाई देते थे कि मेरी सुध ही उन्हें नहीं थी। वे लोग कभी बात-बात में ठटाकर हँस पड़ते थे, और कभी अत्यन्त गम्भीर मुद्रा से ज़ीर्कोव की बातें सुनते थे। ज़ीर्कोव एक दूसरी सुन्दरी के साथ अपने प्रेम-सम्बन्ध का क़िस्सा सुनाते हुए कह रहा था कि उसने उसका परिचय प्रिन्स कोलिया नामक एक सम्भ्रान्त व्यक्ति से भी करा दिया। उक्त प्रिन्स को ज़ीर्कोव ने अपना घनिष्ठतम मित्र बताया। मैं जानता था कि उसकी किसी भी बात में सचाई का लेश भी नहीं है। इसलिए अकस्मात् मैं उसको बीच ही में टोकते हुए एक प्रश्न कर बैठा। मैंने कहा—"तुम कहते हो कि प्रिन्स कोलिया तुम्हारा घनिष्ठ मित्र है। तब तुम्हारा वह घनिष्ठ मित्र आज तुम्हारी विदायी के इस भोज में सम्मिलित क्यों नहीं हुआ?"

मेरा प्रश्न सुनकर दो-एक क्षणों के लिए सब लोग स्तब्ध रह गये। पर शीघ्र त्रुदोलियूवाफ़ ने यह कहकर स्थिति को सुलझा लेना चाहा कि चूँकि मैं शराब के नशे में चूर हो गया हूँ, इसलिए मेरे किसी भी प्रश्न का कोई उत्तर देना किसी भी समझदार व्यक्ति के लिए उचित नहीं है।

कुछ समय बाद जब ज़ीर्कोव के सम्मान में 'टोस्ट' के रस्म की अदायगी की गयी, तो मुझे छोड़कर और सबने अपने-अपने शराब से भरे गिलासों को ऊपर उठाते हुए ज़ीर्कोव के सुख और स्वास्थ्य की कामना की। मुझे निश्चेष्ट देखकर त्रुदोलियूवाफ़ ने कड़क कर कहा—"क्या तुम हमारे सम्माननीय अतिथि के स्वास्थ्य के उपलक्ष्य में पान नहीं करोगे?"

मैंने उत्तर दिया—"अवश्य करूँगा, पर ऐसा करने के पहले मैं एक भाषण देना चाहता हूँ, समझे मिस्टर?"

सिमोनोव ने झल्ला कर कहा—"घृणित जीव कहीं का!"

मैं उसकी बात सुनी-अनसुनी करके मेज़ का सहारा पकड़ कर उठ खड़ा हुआ, और काँपते हुए हाथों से मैंने मद्य से भरे हुए अपने गिलास को उठाया। उठते समय मेरी यह धारणा थी कि मैं कोई अत्यन्त आवश्यक बात कहने जा रहा हूँ; पर ज्योंही मैं खड़ा हुआ, तो मेरी समझ ही में न आया कि मैं क्या कहना चाहता हूँ।

फेरफिचकिन विद्वेषपूर्ण व्यंग के साथ बोला—"सज्जनो! अब सब लोग कुछ समय के लिए शान्त हो जाँय, क्योंकि एक महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति का भाषण होने जा रहा है!"

केवल ज़ीकॉव के मुख में गम्भीरता छा गयी थी। उसने शायद भाँप लिया था कि मैं किस तरह का 'भाषण' दूँगा।

कुछ भी हो, मैंने 'भाषण' आरम्भ करते हुए कहा—"लेफ़्टिनेन्ट ज़ीकॉव, कृपया मेरी बात ध्यान देकर सुनिये। मैं आपको विशेष रूप से यह सूचित कर देना चाहता हूँ कि मैं कोरे शब्दजालों, वाक्चतुर व्यक्तियों और गपोड़ेबाज़ मूर्खों से बहुत घृणा करता हूँ। यह मेरी पहली बात है। दूसरी बात भी सुन लीजिये—"

मेरी बात सुनकर सब लोग भ्रान्त दृष्टि से मेरी ओर ताकते रह गये। मैं कहता चला गया—"मैं गुंडों से और गुंडई से घृणा करता हूँ, विशेष करके गुंडों से। तीसरी बात यह है कि मैं सत्य, स्पष्टवादिता और ईमानदारी पसन्द करता हूँ।" मैं चाहता था कि प्राण-प्रवेग पूर्ण भाषा में अकाट्य युक्तियों के साथ एक गुरु गम्भीर भाषण देकर अपने शत्रुओं को पराजित करूँ। पर नशे ने मेरे मस्तिष्क को इस क़दर धर दबाया था कि मैं ठीक तरह से कुछ भी नहीं कह पाता था, केवल एक मशीन की तरह बोलता जाता था—"हाँ, और मैं उच्च-कोटि के गम्भीर विचारों को पसन्द करता हूँ; और यह भी जान लीजिये, लेफ़्टिनेन्ट जीकॉव, कि मैं प्रेम सौहार्द और ममता पर विश्वास करता हूँ। नहीं; हाँ, और पसन्द करता हूँ—मैं पसन्द करता हूँ—पर कुछ भी हो, लेफ़्टिनेन्ट ज़ीकॉव, मैं आपके स्वास्थ्य की कामना करते हुए आपके सम्मान में यह शराब पीता हूँ। मैं अपनी यह आन्तरिक आकांक्षा प्रकट करता हूँ कि आप सारे काकेशस पर विजय प्राप्त

करें और अपने देश के शत्रुओं का संहार करें और श्रीमान् ज़ीकॉव, यह लीजिये आपके स्वास्थ्य की शुभ-कामना !"

ज़ीकॉव मेरी अन्तिम बात सुन कर अपनी कुर्सी पर से उठा और बोला—"मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।" इस समय उसके मुख में व्यंग अथवा परिहास का लेश भी नहीं था। मैंने नशे की दशा में अपने 'भाषण' में उसके प्रति जो कटु-कटाक्ष किया था, उससे वह वास्तव में बहुत विचलित हो उठा था। उसका चेहरा एकदम पीला पड़ गया था।

त्रुदोलियूबाफ़ झल्ला कर बोला—"जहन्नुम में जाय !" यह कहकर उसने अपनी मुट्ठी से मेज़ पर आघात किया।

फेरफिच्किन क्रोध से काँपता हुआ बोला—"इस तरह की बात का उत्तर मुँह पर एक घूँसा जड़ कर दिया जाना चाहिए !"

सिमोनोव ने कहा—"उसे पकड़ कर बाहर फेंक दिया जाय !"

पर ज़ीकॉव ने शान्त-भाव से कहा—"तुम लोगों को इस तरह उत्तेजित नहीं होना चाहिए। मेरे प्रति तुम लोगों की जो सद्भावना है उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। पर यदि तुम लोगों की यह धारणा हो कि उसकी बातों से मेरा अपमान हुआ है, तो तुम लोग भ्रम में हो।"

मैंने पूरी ताक़त से चिल्लाकर फेरफिच्किन से कहा—"तुमने इस समय मुझसे जो शब्द कहे हैं, उनके लिए तुम्हें मुझसे क्षमा माँगनी होगी, वर्ना मेरे साथ कल द्वन्द्व-युद्ध के लिए तैयार होना पड़ेगा।"

"अच्छी बात है, मैं तुम्हारी चुनौती को स्वीकार करता हूँ।" यह कहते हुए वह ठहाका मार कर हँस पड़ा और उसके दूसरे साथियों

ने भी इस अट्टहास में उसका साथ दिया। मैंने जिस ढंग से उसे चुनौती दी थी, वह वास्तव में हास्यास्पद था।

त्रुदोलियूबाफ़ ने घृणा के साथ कहा—"वह नशे में चूर है, और अपने होश में नहीं है, इसलिए उसकी किसी भी बात पर ध्यान देना मूर्खता होगी।"

सिमोनोव बोला—"मैंने उसे भोज में सम्मिलित होने दिया, इसके लिए मैं अपने आपको कभी क्षमा नहीं करूँगा!"

उनकी इस तरह की बातें सुनकर मैं सोचने लगा—"मुझे अब निश्चय ही बोतल को उठा कर इन सब के सिरों पर दे मारना चाहिए!" यह सोच कर मैंने एक बोतल उठायी, पर उसे किसी के ऊपर दे मारने के बजाय मैं उसमें से चुपचाप अपने गिलास में शराब उँड़ेल कर पीने लगा। पीते हुए मैंने मन-ही-मन कहा—'मैं अन्त तक यहीं बैठा रहूँगा, नहीं तो वे लोग मेरे पीछे मेरे विरुद्ध न जाने किस-किस तरह की बातें करेंगे। वे चाहते हैं कि मैं चला जाऊँ, पर मैं जाने का नहीं। मुझे यहाँ बैठकर शराब पीते रहने का पूरा अधिकार है, क्योंकि मैंने अपने हिस्से का पूरा रुपया चुका दिया है। मैं इन सब को तुच्छ समझता हूँ। और यहाँ गाने का भी मुझे पूरा अधिकार है। मैं चाहूँ, तो अभी गाना शुरू कर दूँ। और—और—ख़ैर!"

पर मैंने गाया नहीं। मैं इस बात की आशा में बहुत देर तक बैठा रहा कि उनमें से कोई मुझसे कुछ बोलेगा, पर कोई कुछ नहीं बोला। घड़ी में आठ का एक घंटा बजा, और साठ मिनट बाद नौ का घंटा भी बज गया, पर मुझसे कोई एक शब्द भी न

बोला। कुछ देर बाद ज़ीर्काव अपने साथियों के साथ वहाँ से हट कर चला गया। वह एक आराम-कुर्सी पर जा बैठा, और उसके साथी उस के चारों ओर बैठ गये। ज़ीर्काव ने अपनी ओर से शैम्पेन की तीन और बोतलें मँगायीं, और सब के गिलासों में उसने शराब ढाली; पर मुझे निमन्त्रित नहीं किया। शराब पीते हुए उसके मुसाहबगण उसकी प्रशंसा के पुल बाँधने लगे। उसी उन्मद अवस्था में वे विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करने लगे। एक बार राजकुमारी डी० के सौन्दर्य की चर्चा चलती, तो कुछ समय बाद शेक्सपियर की प्रतिभा पर वे लोग प्रलाप बकने लगते। उन्हें शेक्सपियर की चर्चा करते देख कर मैं घृणापूर्वक हँसने लगा। मैं जानता था कि वे मूर्ख केवल फैशन की खातिर शेक्सपियर का गुणगान कर रहे हैं, और वास्तव में उसके महत्त्व का रंचमात्र भी परिचय उन्हें नहीं है।

मैं उन लोगों के साहचर्य से एकदम विच्छिन्न होकर अस्थिर अवस्था में कमरे में टहलने लगा। टहलते हुए मैं अपने जूतों से आवश्यकता से अधिक शब्द कर रहा था, ताकि मेरी ओर उन लोगों का ध्यान आकर्षित हो। पर किसी ने भूलकर भी एक बार मेरी ओर नहीं देखा। आठ बजे से लेकर प्रायः ग्यारह बजे रात तक मैं कमरे में चक्कर लगाता रहा। चक्कर लगाते हुए मैं मन-ही-मन कहता जाता था कि "मुझे इस प्रकार टहलने का पूरा अधिकार है, और कोई ऐसा करने से मुझे रोक नहीं सकता।"

'वेटर' जब बीच-बीच में भीतर आता था, तो आश्चर्य से मेरी ओर देखता था। बहुत देर तक इस प्रकार चक्कर लगाते रहने से मेरा

सिर भी चक्कर खाने लगा, और मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ूँगा। साथ ही यह भावना भी प्रबल रूप से मेरे हृदय को धर दबाती थी और मार्मिक कष्ट पहुँचा रही थी कि दस-बीस अथवा तीस वर्ष बीत जाने पर भी मैं आज की घोर अपमान-जनक और ग्लानिपूर्ण घटना को नहीं भूल सकूँगा। यह बात मैं किसी तरह भी भूल नहीं पाता था कि मैंने जान-बूझ कर अपने को अकारण इस घृणित भोज के चक्कर में फँसाया। वास्तव में मेरी स्थिति उस समय अत्यन्त दयनीय और साथ ही परम हास्यास्पद हो उठी थी।

मैं सोचने लगा—"यह बात मैं किस प्रकार प्रमाणित करूँ कि उन लोगों की तुलना में मैं कितना बड़ा आदमी हूँ?" मैं जानता था कि इसका कोई उपाय नहीं है। केवल एक बार उन लोगों ने मेरी ओर देखा—जब उन्हें शेक्सपियर के सम्बन्ध में बातें करते देख कर मैं घृणापूर्वक हँसा था। मेरा हास्य वास्तव में इतना नीचतापूर्ण था कि कुछ देर तक जीर्काव और उसके साथी चुप रह गये और निःशब्द अवस्था में कुछ क्षणों तक मेरी ओर देखते रहे। वे जानते थे शेक्सपियर के सम्बन्ध में मेरा ज्ञान उनकी तुलना में वास्तव में बढ़ा-चढ़ा है। पर इससे मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। कुछ ही देर बाद वे लोग फिर आमोद-प्रमोद की बातों में मग्न हो गये।

जब ग्यारह का घन्टा बजा, तो जीर्काव ने अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"हम लोगों को चलना चाहिए। कहाँ चलना होगा, इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।"

"ठीक है ! ठीक है !"—सबने सम्मिलित कंठ से उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा ।

उन्हें जाते देख कर अकस्मात् मेरे सिर पर एक विचित्र भावना भूत की तरह सवार हो गयी । उस समय मेरा मन इतना भग्न हो गया था कि मुझे अपना गला अपने-आप काटने की इच्छा होती थी । एक प्रचंड ज्वर के से आवेग ने सहसा मुझे घर दबाया । मैं बड़ी तेज़ी से जीर्काव के पास जाकर खड़ा हो गया और रूखे किन्तु दृढ़-स्वर में बोला—"जीर्काव, मैं अपने आज के व्यवहार के लिए तुम से क्षमा चाहता हूँ । फेरफिचकिन, तुमसे भी और दूसरे उपस्थित सज्जनों से भी । क्योंकि मैंने आज तुम सब लोगों के साथ अन्याय किया है ।"

मेरी यह बात सुनते ही फेरफिचकिन विष-बुझे बाणों की तरह तीखे शब्दों में बोल उठा—"ओहो, मैं समझा ! द्वन्द्वयुद्ध के चक्कर में तुम फँसना नहीं चाहते ।"

इस कटूक्ति से मुझे मार्मिक चोट पहुँची । मैंने उत्तर दिया—"यह न समझना, फेरफिचकिन कि मैं द्वन्द्वयुद्ध से घबराता हूँ । मैं कल तुमसे लड़ने के लिए तैयार रहूँगा । पर लड़ने के पहले मैं चाहता हूँ कि हम दोनों में पहले मेल हो जावे । यह अत्यन्त आवश्यक शर्त है । इसके पूरा हो जाने के बाद मैं कल द्वन्द्वयुद्ध में भाग लूँगा । मैं द्वन्द्वयुद्ध से नहीं डरता, यह प्रमाणित करने के लिए मैं यह प्रस्ताव तुम्हारे सामने रखता हूँ कि तुम पहले मुझ पर गोली चलाओगे, और इसके बाद मैं शून्य में गोली चलाऊँगा ।"

सिमोनोव ने कहा—"इस तरह की भावुकतापूर्ण बातों से वह तुम्हें बेवकूफ़ बनाना चाहता है, फेरफिचकिन !"

त्रुदोलियूबाफ़ बोला—"नहीं; बात असल में यह है कि उसका दिमाग़ खराब हो गया है।"

जीर्कोव ने घृणा के साथ मुझे देखते हुए कहा—"कृपा करके मेरा रास्ता न रोको ! मुझसे तुम चाहते क्या हो ?" शराब के नशे से उसका मुख तमतमा रहा था और आँखें चमक रही थीं। प्रायः सभी का यही हाल था।

मैंने कहा—"मैं तुम्हारी मित्रता चाहता हूँ, जीर्कोव ! मैंने आज तुम्हारा अपमान किया, सन्देह नहीं; पर—"

"मेरा अपमान ! तुम्हें एक बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए; वह यह कि किसी हालत में मेरा अपमान करने की हैसियत तुम्हारी नहीं है !"

इस पर त्रुदोयूलिबाफ़ बोल उठा—"इसके अतिरिक्त हम लोग तुम्हारी बातों से काफ़ी उकता चुके हैं। अब कृपा करके हम लोगों को जाने दो। भाइयो, चलो !"

जीर्कोव बोला—"हम लोग चल तो रहे हैं, पर तुम लोगों को एक बात का ध्यान रखना होगा, वह यह कि आलिम्पिया मेरे लिए सुरक्षित रहे, उस पर कोई दूसरा हाथ फेरने न पावे !"

"हाँ, हाँ ठीक है, वह निश्चय ही तुम्हारे लिए सुरक्षित रहेगी !" इस पर सब लोग खिलखिला उठे।

सब लोग हँसते और गाते हुए बाहर निकल गये। केवल सिमोनोव वैटर को 'टिप' देने के इरादे से क्षण भर के लिए ठहर गया। जब वह जाने लगा तो, मैं अकस्मात् उसका रास्ता रोक कर खड़ा हो गया, और हताश भाव से बोल उठा—"सिमोनोव, कृपा करके मुझे छः रूबल उधार दो !"

अत्यन्त आश्चर्य से चकित होकर वह मेरी ओर देखता रह गया। घबराहट के स्वर में उसने पूछा—"क्या तुम 'वहाँ' भी हम लोगों के साथ चलने का इरादा कर रहे हो ?"

"हाँ"

"तब मेरे पास तुम्हें देने के लिए एक कौड़ी भी नहीं है।" यह कहकर वह एक अकृत्रिम घृणा की दृष्टि से मुझे देखकर दरवाज़े की ओर बढ़ा। मैंने उसका ओवरकोट पकड़ लिया, क्योंकि मेरे सिर पर भूत सवार हो गया था।

मैंने विनती के स्वर में कहा—"देखो सिमोनोव, मैंने अभी देखा है कि तुम्हारे पास रुपये हैं, तब तुम मुझे देने से इनकार क्यों करते हो ? क्या मैं वास्तव में उतना ही नीच हूँ, जितना कि तुम समझे बैठे हो। नहीं, तुम इस समय अस्वीकार नहीं कर सकते। तुम नहीं जानते कि मैं कितने महत्वपूर्ण कार्य के लिए रुपया माँग रहा हूँ। मेरा सारा भविष्य, जीवन अथवा मृत्यु, सब कुछ केवल इसी एक बात पर निर्भर करता है।"

सिमोनोव स्पष्ट ही मेरी आज की बातों से इस क़दर ऊब उठा था कि अधिक सहन न कर सकने के कारण उसने अपनी जेब से

छः रूबल निकाल कर मेरी ओर फेंकते हुए अत्यन्त कटु कंठ से कहा—"यह लो! तुम्हारे समान निर्लज्ज कुत्ते से अधिक बोलना वृथा है।" यह कह कर वह अपने साथियों का साथ देने के लिए दौड़ा चला गया।

कुछ क्षण तक उस कमरे में मैं अकेला खड़ा रहा। मेरा सिर बड़े ज़ोरों से चक्कर खा रहा था। तरह-तरह की उद्भ्रान्त भावनाएँ मेरे मष्तिक में मँडरा रही थीं। 'वेटर' अत्यन्त आश्चर्य और कौतूहल के साथ मुझे देख रहा था। सहसा मैं प्रायः चिल्लाते हुए बोल उठा—"ठीक है। मैं अवश्य उन लोगों का पीछा करते हुए वहीं पहुँचूँगा। या तो वे मुझसे क्षमा माँगेगे, मेरे पैरों पड़ेंगे और मेरी मित्रता पाने के लिए प्रार्थना करेंगे, या—या—यदि ऐसा नहीं करेंगे, तो मैं जीर्कोव के ऊपर एक तमाचा जड़ दूँगा!"

६

जब मैं सीढ़ियों से होकर नीचे उतरने लगा, तो मैंने मन-ही-मन कहा—"तो क्या यही वास्तविकता के साथ संघर्ष है? ठीक है, आज जीवन में प्रथम बार मैंने वास्तविकता का अनुभव किया है! पर इस का अनुभव प्राप्त करने के लिए इस बात की क्या आवश्यकता थी कि पोप रोम त्याग कर ब्राज़ील चला जाय, और 'लेक कोमो' में एक विराट् नृत्योत्सव मनाया जा य?"

मैं जानता था कि जीर्कोव अपने दल-बल के साथ किस ओर गया है। होटल के दरवाज़े पर एक गाड़ीवाला अभी तक सवारी न मिल सकने के कारण खड़ा था। उसका ओवरकोट बर्फ़ के कारण सफ़ेद

दिखाई दे रहा था। उसका क्षीण शरीर और चितकबरे घोड़े की पीठ भी ऊपर से गिरने वाली बर्फ़ से ढक गई थी। गाड़ी बहुत पुरानी हो चली थी, और स्थान-स्थान पर टूटी हुई थी। मैं उसी के भीतर बैठ गया। बैठते ही मुझे याद आया कि मुझे सिमोनोव से छः रूबल उधार माँगने पड़े हैं। असह्य आत्मग्लानि के कारण मेरा सारा शरीर कन्टकित हो उठा। मैंने मन-ही-मन कहा—"आज केवल कुछ ही घंटों के भीतर जो बातें हुई हैं—जो घटनाएँ घटी हैं—उनके निराकरण में मेरा सारा जीवन बीत जायगा। पर नहीं, मुझे आज ही उन सब का प्रतिशोध लेना होगा, या आत्महत्या कर लेनी होगी!"

गाड़ीवान ने घोड़े को एक चाबुक मारा, और गाड़ी चलने लगी। मैं सोचने लगा—"पर क्या किसी भी उपाय से मैं उन लोगों की मित्रता फिर से प्राप्त करने में समर्थ हो सकूँगा? क्या वे लोग कभी यह स्वीकार करना चाहेंगे कि दोष उनका था, मेरा नहीं? नहीं, यह सब मरीचिका है, इन्द्रजाल है! आज का सारा चक्कर छायावादी माया से घिरा हुआ रहा है। ठीक कोमो झील में विराट् नृत्योत्सव की हवाई कल्पना की तरह! मेरे इस 'एडवेञ्चर' का वास्तविक फल यह होगा कि मैं जीकॉव के मुँह पर एक थप्पड़ जमा दूँगा—मुझे थप्पड़ जमाना ही पड़ेगा। ऐ गाड़ीवाले! बढ़ाओ।"

गाड़ीवान ने घोड़े की पीठ पर फिर एक चाबुक जमाया।

"ज्योंही मैं कमरे के भीतर प्रवेश करूँगा; त्योंही, तत्काल उसके मुँह पर एक घूँसा तानकर मारूँगा। पर यह क्या यह ठीक न होगा कि घूँसा या थप्पड़ (जो कुछ भी हो) मारने के पहले उससे भूमिका

के रूप में दो-एक बातें की जायँ ? नहीं, कुछ बोलने के बाद मेरा जोश ठंडा पड़ जायगा। भीतर जाते ही, उसी दम, बिना एक शब्द मुँह से निकाले, एक थप्पड़ मारने के बाद तब आगे बात करनी होगी। जीर्काव बड़े आराम से आलिम्पिया को बग़ल में दबाकर उसके साथ राग-रंग की बातें कर रहा होगा। वह कलमुही आलिम्पिया जिसने एक बार मेरा मज़ाक उड़ाया था, और एक रात के लिए मेरे साथ रहने से इनकार किया था! मैं भीतर जाते ही आज उसके सिर के बाल उखाड़ डालूँगा, और जीर्काव के कान। या, इससे अच्छा यह होगा कि उसका केवल एक कान पकड़ कर उसे घसीटते हुए सारे कमरे में एक बार चक्कर खिलाऊँगा! यह देखकर सम्भवतः उसके साथी मुझे पकड़ कर पीटना शुरू कर देंगे, और अधिक से अधिक यही करेंगे कि मुझे उठाकर खिड़की से बाहर फेंक देंगे! पर इससे क्या हुआ? पहला थप्पड़ तो मेरा ही रहेगा! इसके बाद दूसरे दिन उसके साथ द्वन्द्वयुद्ध होगा। द्वन्द्वयुद्ध में मैं वीरता और बड़प्पन का भाव दिखाऊँगा, और उससे कहूँगा कि पहले तुम गोली चलाओ; और मैं शून्य में गोली चलाऊँगा—इस पर सब मेरे चरित्र की महानता की प्रशंसा करेंगे। पर ठहरो! यदि मेरे भीतर पहुँचते ही पहले वे सब मिलकर मुझ पर टूट पड़ें और मेरी दुर्गति कर डालें, तब? निश्चय ही फेरफिचकिन मुझे पीछे से पकड़ कर मेरा गला दबावेगा, और त्रुदोलियूब्राफ़ सामने से लात और घूँसे मारना शुरू कर देगा। पर इसमें क्या बुराई है? इस प्रकार मेरे समान एक असहाय व्यक्ति को मारने के बाद अन्त में उनकी आँखें खुलेंगी, और वे निश्चय ही मुझ

से क्षमा चाहेंगे। बढ़ाओ, बढ़ाओ! अबे मूर्ख गाड़ीवान, बढ़ाता क्यों नहीं?" मेरी आँखों में अपनी दुर्दशा की कल्पना से आँसू आ गए थे।

आँसुओं को पोंछते हुए मैं मन-ही-मन कहता चला गया—"हाँ, ठीक है! कल सुबह जीकॉव के साथ मेरा द्वन्द्वयुद्ध होगा, यह निश्चित है। साथ ही यह भी निश्चित है कि उस द्वन्द्वयुद्ध के कारण मैं आफ़िस से निकाल दिया जाऊँगा। पर कुछ भी हो, मैं द्वन्द्वयुद्ध के लिए पिस्तौलें कहाँ से लाऊँगा? अपने वेतन में से कुछ रुपये मुझे 'एडवान्स' के बतौर लेने होंगे और उनमें दो-एक पिस्तौलें खरीदनी पड़ेंगी। और बारूद और गोली? जो लोग द्वन्द्वयुद्ध में मेरे 'द्वितीय' होंगे, यह उनका काम है, मेरा नहीं। पर तड़के ही मैं आदमियों को कहाँ से ढूँढूँगा? कौन मेरा 'द्वितीय' बनना स्वीकार करेगा? रुपये का प्रबन्ध कैसे हो सकेगा?—दुत!"

सहसा अपनी ऊटपटाँग कल्पना की मूर्खता के सम्बन्ध में मुझे चैतन्य हुआ। फिर भी मैंने वास्तविकता की ओर से मुँह मोड़ लेने की चेष्टा की और गाड़ीवाले को लक्ष्य करके बोला—"बढ़ाओ! मूर्ख कहीं का! तेज़ क्यों नहीं हाँकता!"

"यह लीजिये, सरकार!" कहकर उस ग़रीब ने अपने अड़ियल घोड़े को फिर एक बार चाबुक से मारा। कुछ दूर चलने पर अकस्मात् एक दूसरा ही विचार मेरे मन में उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा—"यदि यहाँ से सीधे घर चला जाऊँ और आराम से सो रहूँ, तो कैसा रहेगा? पर क्या वहाँ भी मुझे नींद आवेगी? उफ़! कैसी भयंकर

भूल आज के दिन मुझसे हुई ! क्यों मैंने उस नीच ज़ीकॉव की विदायी के भोज में शरीक होने की मूर्खता की ! बढ़ाओ, बढ़ाओ ! गधा कहीं का ! सुनता नहीं !'

'अच्छा, यदि वे लोग सब मिलकर मुझे हवालात में दे दें ? पर नहीं, ऐसा करने का साहस वे नहीं कर सकते । और यदि ज़ीकॉव ने मुझे अपने से हीन श्रेणी का समझ कर मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करने से अस्वीकार कर दिया, तो उस हालत में मैं क्या करूँगा ? उस हालत में मैं—हाँ, मैं यह करूँगा कि उसके दरवाज़े के पास जाकर खड़ा हो जाऊँगा, और ज्योंही वह गाड़ी में सवार होने के लिए बाहर निकलेगा, त्योंही मैं उसका गला पकड़ कर, उसका ओवरकोट खींचकर फाड़ डालूँगा, और उसके हाथ में पूरी ताकत से अपने दाँत गड़ा कर ख़ून निकलने के पहले नहीं छोड़ूँगा । इसके बाद रास्ते में चलने वाले सब लोगों को पुकार कर कहूँगा—तुम सब लोग देखो ! एक आत्मदग्ध और हताश व्यक्ति किस हद तक बौखला सकता है ! इसका ज्वलन्त दृष्टान्त देख लो ! मेरी बौखलाहट से उत्तेजित होकर ज़ीकॉव निश्चय ही मुझे पीटना शुरू कर देगा । पर मैं राहगीरों को लक्ष्य करके चिल्ला-चिल्ला कर कहता जाऊँगा—'यह देखो ! यह महाशय काकेशिया पर विजय प्राप्त करने जा रहे हैं ! पर इनके मुँह पर मेरे थूक के जो दाग़ हैं, उन्हें देख लो ! इसके बाद निश्चय ही मैं गिरफ़्तार हो जाऊँगा, मेरे लिए मेरे आफ़िस का अस्तित्व ही धरातल से लुप्त हो जायगा । मैं जेल चला जाऊँगा, और यह भी सम्भव है कि अन्त में मुझे साइबेरिया में जाकर पाँच वर्ष के लिए निर्वासन का दंड भुगतना

पड़े । पर कुछ परवा नहीं ! पाँच वर्ष में जब मैं दीन-हीन दशा में छिन्न-मलिन वेश में साइबेरिया से लौटकर आऊँगा तो फिर जीकॉव को खोजूँगा । सम्भवतः तब वह किसी शहर में एक गौरवपूर्ण उच्चपद-प्राप्त कर्मचारी के रूप में सुखमय विवाहित जीवन बिताते हुए अत्यन्त प्रसन्नचित्त दिखायी देगा । मैं उसके पास जाकर कहूँगा—'नीच ! पापी ! दुष्टात्मा ! देख, तेरे कारण मेरी यह कैसी दुर्गति हो गयी है ! मेरे मुँह में झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, गाल पिचक गये हैं, पहनने को इन फटे चिथड़ों के सिवा मेरे पास और कुछ नहीं रहा ! मैंने तेरे कारण अपनी जीविका, विद्या, बुद्धि, यश-मान सब कुछ गँवा दिया ! जिस स्त्री से मैं प्रेम करता हूँ, वह भी मेरी नहीं रही ! चल यह पिस्तौलें हैं, तेरे साथ एक बार जीवन-मरण का द्वन्द्वयुद्ध हुए बिना मैं शान्त नहीं हो सकता ! पर—पर खैर, कोई बात नहीं । तेरे समस्त अक्षम्य अपराधों को मैं क्षमा कर देता हूँ ।' यह कहकर मैं एक बार शून्य में गोली चलाऊँगा, और फिर सदा के लिए संसार से और समाज से अलग होकर कहीं विलीन हो जाऊँगा ।"

इस प्रकार अपनी दयनीय दशा का काल्पनिक चित्रण करते हुए मैं फिर एक बार रोने के लिए व्याकुल हो उठा । फिर मैंने सोचा—"मैं वास्तव में यह क्या पागलपन कर रहा हूँ ? कहाँ जा रहा हूँ ? किस लिए ? जीकॉव और उसकी मंडली के बीच में फिर से कूद पड़ना निश्चय ही मूर्खता है । इस बार अपने रंग में भंग होते देखकर वे लोग सब मिलकर मेरी जो गत बना डालेंगे उसका अनुमान सहज में लगाया जा सकता है, पर—पर अब मेरे लिए दूसरा रास्ता ही क्या

रह गया है ? नहीं, मुझे उनके बीच में जाना ही होगा ! चलो गाड़ीवान ! बढ़ाओ। पाजी कहीं का ! बढ़ाता क्यों नहीं !" यह कहकर मैंने उसकी पीठ पर एक घूँसा तानकर मारा।

"ग़रीब को क्यों मारते हैं, सरकार !" यह कहकर उसने अपने दुर्बल घोड़े की पीठ पर कसकर चाबुक मारना शुरू कर दिया। आकाश से बर्फ़ के बड़े-बड़े क़तरे गिर रहे थे। बड़ी भयंकर सर्दी पड़ रही थी, पर मेरी मानसिक दशा ऐसी उत्तेजित हो उठी थी कि जाड़े की उस विकट रात्रि में मैं ओवरकोट के बटन खोले हुए था। मेरे मन में केवल एक बात निश्चित से निश्चिततर होती चली जाती थी। वह यह कि आलिम्पिया के यहाँ पहुँचने पर जीकोव को देखते ही उसके मुँह पर एक थप्पड़ कसकर जमाना होगा, फिर चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। सड़क के इक्के-दुक्के लैम्प मन्द प्रकाश से टिमटिमा रहे थे। ऐसा जान पड़ता था जैसे किसी शव-यात्रा में मशालें जल रही हों।

अन्त में मैं निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। गाड़ी से कूद कर मैं बड़ी तेज़ी से मकान की सीढ़ियों से होकर एक साँस में ऊपर चढ़ गया। इसके बाद दरवाज़े पर ज़ोर से धक्के देने लगा। शीघ्र ही दरवाज़ा खुल गया—जैसे कोई पहले से ही मेरा इन्तज़ार कर रहा हो। सम्भवतः सिमोनोव ने पहले ही मकान की मालकिन को मेरे आने की सूचना देकर उसे सावधान कर दिया था, ताकि मैं कोई ऊधम न मचाने पाऊँ। वह मकान भी बड़ा विचित्र था। दिन में

जहाँ दर्ज़ी काम कियाकरते थे, और रात में वह एक चकले में परिणत हो जाता था।

बाहर के कमरे में प्रकाश नहीं था। वहाँ से होकर मैंने एक 'प्राइवेट' कमरे में प्रवेश किया। उस कमरे से मैं अपरिचित नहीं था। वहाँ एक मोमबत्ती जल रही थी। मैंने एक नौकर से अत्यन्त अधीरता के साथ पूछा—"मेरे साथी किस कमरे में हैं?" मालूम हुआ कि वे लोग मेरे आने की सूचना पाते ही दूसरे रास्ते से बाहर निकल गये थे। इतने में मालकिन एक लड़की को लेकर मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। लड़की अत्यन्त मूर्खतापूर्ण ढंग से मुसकरा रही थी। उस चकले की कुछ लड़कियों से मैं परिचित था, जिस लड़की को लेकर मालिकन आयी थी उसे भी मैंने पहले दो-एक बार देखा था। मैंने घृणा से उसकी ओर से मुँह फेर लिया और अन्यमनस्क भाव से कमरे में टहलने लगा। मैं सोचने लगा कि वास्तव में यह अच्छा ही हुआ कि उन लोगों से मैं यहाँ नहीं मिलने पाया, नहीं तो निश्चय ही कोई भयंकर कांड हो जाता, क्योंकि मैं जीकांव पर चोट किये बिना न रहता। इतने में एक दूसरे दरवाज़े से एक दूसरी लड़की ने भीतर प्रवेश किया। उसके म्लान मुख में एक ऐसा आश्चर्यजनक आकर्षण मैंने पाया कि कुछ देर तक विभ्रान्त दृष्टि से उसकी ओर देखता रह गया। उसकी आँखों से एक ऐसी मार्मिकता व्यक्त हो रही थी, जो मेरी उस समय की मानसिक स्थिति में मुझे अत्यन्त प्रिय मालूम हुई। यदि वह भी पहली लड़की की तरह मुसकराती होती, तो कभी वह मुझे आकर्षित न कर पाती। पर एक ऐसी सकरुण

गम्भीरता उसके मुख में वर्तमान थी कि मैं जितना ही उसे देखता उतना ही अधिक आकर्षित होता जाता था। वह सुन्दरी थी या नहीं ? मैं कह नहीं सकता। पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि ऐसी आश्चर्यमय नारी-मूर्ति मैंने इसके पहले अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखी थी। वह इस चकले में कहाँ से और कैसे आ पहुँची, यह सोचकर मैं हैरान था। मैं जानता था कि जिस तरह के मूर्ख और हृदयहीन कामी कुत्ते उस चकले में आते रहते थे वे कभी इस लड़की के मार्मिक गाम्भीर्य का मूल्य नहीं समझ सकते थे, और जीकॉव और उसके साथी स्वभावतः उसके प्रति आकर्षित नहीं हुए होंगे।

उसका पहनावा सीधा-सादा था और वह सहज, स्वाभाविक भाव से मेरे सामने खड़ी थी। अकस्मात् मेरे मन में शैतान ने एक कुटिल जाल बुनना आरम्भ कर दिया। पास ही शीशा था। उसमें मैंने अपना मुख देखा। मेरे पीले मुख में एक घृणित और नीचता-पूर्ण भाव वर्तमान था और मेरे बाल बिखरे हुए थे। मैंने मन-ही-मन कहा—"अच्छा ही है, इस लड़की के मन में मेरे प्रति एक अरुचि और घृणा का भाव उत्पन्न हो जाय, तो अच्छा ही है। मैं इस समय सजाव-शृंगार द्वारा आकर्षक बनना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि मेरे भीतर का शैतान उससे छिपा न रहे और मेरे रूप-रंग, हाव-भाव और व्यवहार से बात पूर्णतया प्रकट हो जाय।"

७

वह आश्चर्यमयी लड़की मेरे साथ उस कमरे में अकेली रह गयी थी। किसी बग़लवाले कमरे से एक घड़ी ने एक विचित्र कर्कश

शब्द में 'खर्रर' करके दो का घन्टा बजाया। मैं दिन भर की उत्ते-जना के बाद थकावट के कारण ऊँघने लगा था। घंटे का शब्द सुनकर चौंक कर जाग पड़ा।

कमरा बहुत तंग और अँधेरा था। एक कोने में मेज़ के ऊपर जो मोमबत्ती जल रही थी वह बुझने ही को थी। बीच-बीच में एक आध क्षण के लिए चटखने का शब्द करती हुई जल पड़ती थी, और फिर एक दम मन्द पड़ जाती थी। मेरे मस्तिष्क में शराब के नशे का कोई प्रभाव शेष नहीं रह गया था, पर खुमार पूर्णतया वर्त-मान था। जीकॉव की विदायी के भोज के अवसर पर अपनी मूर्खता और साथियों की उद्दंडता के कारण मैं जिस प्रकार दलित और अपमानित हुआ था, और जिस बौड़मपन के साथ मैंने उस अपमान का बदला लेने की ठानी थी। उन सब बातों की अप्रिय स्मृति मुझे अभी तक दग्ध कर रही थी। इस बात की परम आवश्यकता मुझे महसूस हो रही थी कि अपने जले दिल के फफोले किसी के आगे फोड़ूँ। सहसा मैंने देखा कि आँखों का एक जोड़ा परम कौतूहल के साथ मुझे देख रहा है। उन आँखों की वह दृष्टि ऐसी निर्लिप्त और निर्विकार थी कि इस बात पर विश्वास करना मेरे लिए कठिन हो रहा था कि वे किसी मनुष्य की आँखें हैं। वे मेरी ओर इस निश्चित रूप से केन्द्रित हो रही थीं कि मैं उनके निरीक्षण से घबरा उठा।

वह लड़की बहुत देर से चुपचाप मेरी बगल में बैठी हुई थी। अकस्मात् मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि मैं अभी तक एक शब्द भी उससे नहीं बोला हूँ। यदि सच पूछा जाय, तो मुझे हम

दोनों का एकदम चुप बैठे रहना अच्छा मालूम होरहा था। साथ ही यह सोचकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था कि वह लड़की किस अटूट धैर्य के साथ मेरे पास दो घंटे से निःशब्द बैठी हुई है। मेरे भीतर एक भयंकर पाशविक भावना जागरित हो रही थी, जो प्रेम से एक दम रहित और विशुद्ध वासनात्मक थी। बहुत देर तक हम दोनों एक दूसरे की ओर बिना कुछ बोले एकटक देखते रहे। उसने एक क्षण के लिए भी अपनी आँखें नहीं फेरीं और न अपने मुख के भाव ही को बदला। अन्त में मुझे जब उसकी दृष्टि की निर्विचित्रता असह्य मालूम होने लगी, तो मैं रह न सका, और दीर्घ मौन को भंग करते हुए सहसा मैंने प्रश्न किया—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसने प्रायः फुसफुसाते हुए, अत्यन्त क्षीण स्वर में उत्तर दिया—"लीज़ा।" इसके बाद उसने आँखें फेर लीं।

क्षण भर के लिए मैं चुप रहा। उससे और क्या बात की जाय, मेरी समझ में नहीं आता था। कुछ सोचकर मैंने कहा—"आज का मौसम बहुत खराब है—भयंकर रूप से बर्फ़ गिर रही है।"

वह चुप रही। स्थिति अत्यन्त हास्यास्पद हो रही थी। उस विचित्र लड़की का मौन भाव मुझे अत्यन्त रहस्यमय जान पड़ता था। कुछ समय बाद मैंने कुछ खीझकर पूछा—"क्या पीटर्सबर्ग में ही तुम्हारा जन्म हुआ है ?"

"नहीं !"

"तब ?"

"मैं रीगा की रहने वाली हूँ।" अत्यन्त नीरसता के साथ उसने उत्तर दिया।

"तो यह कहो कि तुम ज़र्मन हो ?"

"नहीं, मैं रूसी हूँ।"

"क्या यहाँ आये तुम्हें बहुत दिन हो गये ?"

"कहाँ आये ?"

"इस चकले में।"

"दो सप्ताह ?",

वह अत्यन्त संक्षिप्त रूप से मेरे प्रश्नों का उत्तर दे रही थी। कुछ समय बाद मोमबत्ती समाप्त होकर बुझ गयी। कमरे में गाढ़ अन्धकार छा गया।

मैंने पूछा—"तुम्हारे माँ-बाप हैं ?"

"हाँ—नहीं—हाँ।"

"कहाँ हैं ?"

"रीगा में।"

"कौन हैं वे ?"

"हैं कोई।"

"कोई, कौन ? उन लोगों का पेशा क्या है ? क्या करते हैं वे ?"

"वे बनिये हैं।"

"क्या तुम बराबर उन्हीं के साथ रहती थीं ?"

"हाँ।"

"तुम्हारी आयु क्या है ?"

"बीस वर्ष ।"

"तुमने अपने माँ-बाप को क्यों छोड़ा ?"

"क्योंकि—" यहाँ पर वह रुक गई। स्पष्ट ही अपने माँ-बाप की चर्चा उसे प्रिय नहीं मालूम हो रही थी। कुछ देर तक कमरे में फिर मौन छा गया। मुझे उसके पास बैठे रहना किसी तरह भी अच्छा नहीं लग रहा था, और वहाँ से उठकर चल देने का अच्छा मौक़ा उस क्षणिक स्तब्धता के कारण मुझे मिल गया था। पर मैं कह नहीं सकता मैंने उस सुयोग से लाभ क्यों नहीं उठाया। रह-रहकर जीकॉव तथा उसके साथियों के साथ मेरा जो संघर्ष हुआ था उसकी स्मृति मुझे पीड़ित कर रही थी, और उस पीड़न के कारण मुझमें उठने की शक्ति नहीं रह गयी थी। अपने अन्तर की उस ज्वाला से किसी दुर्बल प्राणी को दग्ध किये बिना मैं चैन नहीं पा रहा था। मैं अज्ञात संस्कारवश समझ रहा था कि जो लड़की मेरी बग़ल में बैठी हुई है वह इतनी दुर्बल है कि मैं उसके साथ कैसी ही ज़्यादती क्यों न करूँ वह मेरे आगे अपना सिर नहीं उठा सकती। इसलिए मेरे मन ने उसे अपने विषैले उद्गारों के लिए अत्यन्त उपयुक्त पात्र समझ लिया। पिछले दिन तीसरे पहर अफ़िस से घर लौटते समय मैंने एक विशेष दृश्य देखा था। सहसा मेरे मन में उसकी स्मृति जाग पड़ी। मैंने कहा—"कल मैंने कुछ आदमियों को एक 'काफ़िन' (शवाधार) ले जाते हुए देखा। वे इस तरह ले जा रहे थे कि एक बार वह गिरने से बाल-बाल बच गया।"

"काफिन ?"

"हाँ; यह सेनाइया स्ट्रीट की घटना है। वे लोग एक तहखाने से उसे लाये थे।"

"तहखाने से ?"

"हाँ, एक चकले के सबसे नीचे वाले हिस्से से। वह स्थान कीचड़ और गन्दगी से भरा हुआ था। वहाँ से भयंकर दुर्गन्ध आती थी।"

वह चुप हो रही। कुछ देर ठहर कर मैंने कहा--"ऐसे मौसम में जब कि दिन-रात बर्फ़ गिर रही हो, किसीका जनाज़ा निकलना वास्तव में एक दुर्घटना है।"

वह बोली--"मौसम अच्छा हो चाहे बुरा, जो मर गया उसके लिए सब समान है।"

मैंने एक जम्हाई लेते हुए कहा—"उसके लिए समान हो सकता है, पर दूसरों के लिए समान नहीं है।"

"कैसे ?"

"कब्र खोदने वालों के कपड़ों के ऊपर जब गीली बर्फ़ पड़ती होगी, तो वे निश्चय ही मरनेवाले को गाली देते होंगे। इसके अलावा बर्फ़ या पानी गिरते रहने से क़ब्रों के भीतर पानी भर जाता है।"

उसने कौतूहल से पूछा—"पानी भर जाता है ? वह कैसे ?"

"तुम्हें पता नहीं है कि फाल्कोवो का क़ब्रिस्तान ऐसी जगह पर है जहाँ की मिट्टी सदा गीली रही है। वहाँ दलदल है, और केवल छः हाथ ज़मीन खोदने पर ज़मीन के नीचे से पानी ऊपर चढ़ आता

है। ऐसी दशा में लाश की क्या दुर्गति होती होगी, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। मैंने अपनी आँखों से इस प्रकार का दृश्य देखा है—कई बार।"

वास्तव में मैं झूठ बोल रहा था; मैंने कभी अपनी आँखों से इस प्रकार का दृश्य नहीं देखा था—केवल सुनी-सुनाई बात को मैं अपनी कल्पना का रंग देकर दुहरा रहा था।

वह स्तब्ध और विस्मित भाव से मुझे देख रही थी। मैंने पूछा—"क्या यह बात सुनकर तुम्हारे मन में मरने का डर पैदा नहीं होता?"

उसने चौंक कर कहा—"मैं क्यों मरूँगी?"

"तुम्हें एक-न-एक दिन मरना ही होगा, और ठीक उसी दशा में तुम मरोगी, जिस दशा में सेनाइया स्ट्रीट में रहने वाली उस स्त्री की मृत्यु हुई है। वह भी किसी समय तुम्हारी ही तरह एक नौजवान लड़की थी, पर अब क्षयरोग का शिकार बन कर वह मृत अवस्था में पड़ी हुई है।"

"उसने ग़लती की। उसे अस्पताल में जाकर मरना चाहिए था।"

मैंने कहा—"मृत्यु के समय वह अपनी नायका के क़र्ज़ के भार से बहुत दबी हुई थी। पर सबसे भयंकर बात यह है कि क्षयरोग से पीड़ित रहने पर भी मृत्यु के कुछ ही समय पहले तक नायका बलपूर्वक उससे पेशा करवाती रही! मैंने कुछ गाड़ीवालों को (जो निश्चय ही उस स्त्री के पुराने प्रेमिक रहे होंगे) कुछ सिपाहियों के आगे उसकी हीन दशा का वर्णन करते सुना है। सारा क़िस्सा सुनकर वे सिपाही ठहाका मारते हुए हँसने लगे!"

कहना नहीं होगा कि मेरी सारी बातें मन-गढ़न्त थीं। पर उस मनगढ़न्त क़िस्से का ऐसा गम्भीर प्रभाव उस लड़की पर पड़ा कि उसके मुँह से मारे भय और विस्मय के एक शब्द भी नहीं निकल पाता था। उसे चुप रहते देख कर मैं अपनी बात के गहरे प्रभाव से विजयोल्लसित हो उठा, और बोला—"तो क्या तुम अस्पताल में जाकर मरना बेहतर समझती हो?"

"एक ही बात है! मुझे कोई अन्तर नहीं दीखता। पर मैं क्या मरने लगी?"

"अभी नहीं, पर बाद में तुम्हें मरना ही होगा।"

हाँ, ठीक है! बाद में—हाँ, ठीक है।"

"पर देखो, अभी तुम जवान हो, और देखने में भी बुरी नहीं हो। अभी तुम किसी क़दर रुपया कमाने में समर्थ हो। पर याद रखो, एक वर्ष बाद तुम्हारा सारा रूप और यौवन नष्ट हो जायगा।"

"केवल एक ही वर्ष बाद?"

"कम से कम इतना तो निश्चित ही है कि एक वर्ष बाद तुम्हारा मूल्य बहुत घट जायगा। फल यह होगा कि तुम इस चकले को छोड़ने के लिए बाध्य हो जाओगी, और एक साधारण चकले में तुम्हें आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा। कुछ समय बाद उस चकले के योग्य भी तुम नहीं रह जाओगी, और एक उससे भी घटिया चकले में तुम्हें जाना पड़ेगा। इस प्रकार तुम नीचे, और नीचे गिरती चली जाओगी। प्रायः सात वर्ष बाद तुम्हें सेनाइया स्ट्रीट के नरक से भी गन्दे किसी

चकले की कालकोठरी में जीवन बिताना पड़ेगा। उस घोर अस्वास्थ्य-कर स्थान में निश्चय ही एक दिन तुम्हें कोई भयंकर रोग पकड़ लेगा, और शीघ्र ही तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।"

उस असहाय लड़की के हृदय में एक लोमहर्षक आतंक का भाव उत्पन्न करने में मुझे अत्यन्त नीचतापूर्ण आनन्द प्राप्त हो रहा था। मेरी बात सुनकर अत्यन्त अधैर्य के साथ उसने कहा—"अधिक से अधिक यही न होगा कि मैं मर जाऊँगी ?"

"पर क्या तुम्हें खेद नहीं होता ?"

"खेद किस बात के लिए ?"

"इस प्रकार का जीवन बिताने के लिए ?"

इस प्रश्न के उत्तर में वह कुछ न बोली, केवल असहाय, व्याकुल दृष्टि से मेरी ओर देखती रह गयी।

कुछ देर बाद मैंने फिर पूछा—"क्या तुमने कभी किसी से सच्चे हृदय से प्रेम किया है !"

"इससे आपको क्या वास्ता ?"

"ठीक है, मुझे कोई वास्ता नहीं। तुम्हारे हृदय की बात जानने के लिए मैं तुम पर किसी प्रकार का दबाव डालना भी नहीं चाहता। पर तुम नाराज़ क्यों होती हो ? कुछ भी हो, मुझे दुःख है—"

"किस लिए ?"

"तुम्हारे लिए।"

उसने अत्यन्त धीमे स्वर में कहा—"इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।" यह कहते हुए उसने अपनी अस्थिरता द्वारा यह भाव प्रकट

किया कि मेरी बातें उसे तनिक भी प्रिय नहीं मालूम हो रही हैं। इस बात से मेरा क्रोध और अधिक बढ़ गया। मैंने कहा—"तुमने क्या कभी इस बात पर विचार किया है कि तुम जिस पथ पर चल रही हो वह उचित मार्ग है या नहीं ?"

"नहीं, मैं कभी किसी बात पर विचार नहीं करती।"

"ठीक है। तुम्हारे पतन का कारण यही है। अभी समय है, इसलिए जल्दी आँखें खोलकर देखो कि तुम पतन के किस गहन गर्त की ओर तेज़ी से लुढ़कती चली जा रही हो। अभी तुम जवान हो और सुन्दरी हो; अभी यदि तुम चाहो और चेष्टा करो, तो किसी भले आदमी से तुम्हारा विवाह हो सकता है। समय चूकने पर फिर तुम्हारे उद्धार का कोई उपाय नहीं रह जायगा !"

"पर क्या विवाह करने से सब का जीवन सुखमय बन जाता है ?"

"नहीं; मैं मानता हूँ कि सभी लोगों का विवाहित जीवन सुखी नहीं होता। पर तुम्हारे वर्तमान जीवन से विवाहित लड़कियों का जीवन निश्चय ही अच्छा होता है। और जहाँ पति-पत्नी में प्रेम होता है, वहाँ दुखमय जीवन भी सहनीय बन जाता है। पर चकले के जीवन में केवल गन्दगी और आत्मग्लानि के सिवा और है क्या ? थुः ! ऐसे जीवन से तो आत्महत्या कर लेना अच्छा है !"

मैंने निदारुण घृणा का भाव दिखाकर मुँह फेर लिया। प्रारम्भ में मैं जानबूझ कर उस परिस्थितियों की शिकार बनी हुई नारी की विवशता का लाभ उठा कर उस पर अकारण आतंक जमाने की

इच्छा से प्रेरित हुआ था; पर धीरे-धीरे अपने तर्कों की रगड़ से मैं अपने प्रत्येक कथन की यथार्थता को हृदय से अनुभव करने लगा था। इसके अतिरिक्त अपने एकाकी जीवन में चिन्तन के क्षणों में मैंने जो-जो बातें सोची थीं, जिन-जिन सिद्धान्तों पर मैं पहुँचा था, उन सबको व्यक्त करने की अदम्य आकांक्षा भी मेरे मन में जागरित हो उठी थी।

मैं कहता चला गया—"तुम शायद यह सोच रही होगी कि मैं यह जानते हुए भी कि तुम लोगों का जीवन अत्यन्त घृणित है, तुम्हारे पास क्यों आया। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जब मैं यहाँ आया था, तो मैं अपने आपे में नहीं था। अपने कुछ साथियों के फेर में पड़ कर मैंने बहुत शराब पी ली थी, इसलिए यहाँ आ पहुँचा। इस के अतिरिक्त तुम्हारी और मेरी कोई तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि मैं कैसे ही घृणित जीवन के दलदल में कुछ समय के लिए क्यों न फँस जाऊँ, मैं कभी तुम्हारे समान किसी की दासता स्वीकार नहीं कर सकता। मैं जब चाहूँ अपने जीवन की गन्दगी को झाड़ कर फेंक सकता हूँ। पर तुम प्रारम्भ से घृणित दासता के बन्धन में बँधी हुई हो और अन्त तक रहोगी। तुमने केवल अपने शरीर को ही समर्पित नहीं कर दिया है, बल्कि अपनी आत्मा की और अपनी स्वतन्त्र इच्छा की भी बलि दे दी है। इसलिए कुछ समय और बीत जाने पर तुम चाहने और चेष्टा करने पर भी अपने को इस लौह-शृंखला से मुक्त नहीं कर सकोगी। यह शृंखला तुम्हें धीरे-धीरे और अधिक दृढ़ता से जकड़ती चली जायगी। कुछ भी हो, मैं तुमसे एक सीधा-सादा प्रश्न करना

चाहता हूँ—'क्या तुम अपनी मालकिन की क़र्ज़दार नहीं हो ?' मैं जानता हूँ कि ये नायकाएँ किस प्रकार तुम्हारी जैसी लड़कियों को क़र्ज़ के फेर में डाल कर आजीवन अपनी मुट्ठी में किये रहती हैं। उसके चंगुल से छुटकारा पाना तुम्हारे लिए असम्भव है। तुम जितना ही उससे उबरने की चेष्टा करोगी, उतना ही अधिक उसमें फँसती जाओगी। अपनी आत्मा को शैतान के पास बन्धक रखने पर भी तुम्हें कुछ आर्थिक लाभ नहीं हुआ है, यह मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। मेरी बात ही कुछ दूसरी है। मैं जीवन-संग्राम में पराजित और हताश होने के कारण इस कीचड़ में कभी-कभी अपने को फँसा लेता हूँ। पर इससे मेरी आत्मा को कुछ सन्तोष प्राप्त होता हो, ऐसा नहीं। यहीं पर देख लो, तुम और मैं बहुत देर से एक साथ बैठे अथवा लेटे बातें कर रहे हैं, पर प्रेम या सान्त्वना की एक भी बात हम इतने समय में एक-दूसरे से नहीं कह पाये हैं। तुम केवल एक जंगली पशु की तरह मेरी ओर देखती रही हो, और मैं तुम्हारी ओर। क्या स्त्री-पुरुष के मिलन का केवल यही महत्त्व है ? क्या इसी प्रकार एक-दूसरे से प्रेम किया जाता है ? नहीं, यह घोर नारकीय मनोवृत्ति है। आदि से अन्त तक यह सारा चक्कर भयंकर गन्दगी से भरा हुआ है।"

मेरे इतने लम्बे व्याख्यान के उत्तर में उसने केवल कहा—"ठीक है !" पर उसके कहने का ढंग ऐसा था जिससे मेरे मन में पूरा विश्वास हो गया कि इसके पहले उसके अज्ञात मन में भी इस प्रकार के विचार उथल-पुथल मचा रहे थे। मैं उसकी आत्मा की पूरी तह

तक पैठ कर उसके भीतर की वास्तविकता जानने के लिए और अधिक उत्सुक हो उठा। मेरा उद्देश्य केवल कौतूहल-निवारण के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गया था। वह कभी उठती थी, कभी बैठती थी। स्पष्ट ही मेरी बातों से उसके भीतर एक वेदनापूर्ण चंचलता उत्पन्न हो गयी थी। अँधेरे में मैं देख नहीं सकता था कि उसकी आँखों में किस प्रकार का भाव झलक रहा है, यद्यपि वह बात जानने के लिए मैं अत्यन्त अधीर हो रहा था। फिर भी उसके दीर्घ निःश्वासों से उसके मन की वेदना का आभास मुझे मिल रहा था।

मैंने पूछा—"तुमने इस चकले में आकर रहना क्यों पसन्द किया ?"

"किसी विशेष कारण से।"

"यदि यहाँ न आकर तुम अपने बाप के साथ ही रहतीं तो क्या यह अच्छा न होता ? वहाँ तुम जीवन के बहुत से खतरों से बच सकती थीं।"

"पर यह आप कैसे कह सकते हैं कि वहाँ खतरे नहीं थे ? जब यहाँ से भी अधिक खतरे हों, यहाँ से भी अधिक भयानक परिस्थितियाँ हों, तब ?"

मैंने मन-ही-मन कहा—"वास्तव में उसका इंगित किस बात की ओर है, यह अभी जानना बाक़ी है। पर ठहरो, मैं अभी सब बातें ठीक-ठीक मालूम किये लेता हूँ।' यह सोचकर मैं बोला—"हो सकता है। बहुत-सी लड़कियों के घरों की दशा चकलों से भी अधिक

शोचनीय होती है। बहुत सम्भव है, घर पर किसी ने तुम्हारे साथ निष्ठुर व्यवहार किया होगा, और यह भी सम्भव है कि तुमने जीवन में जितने पाप दूसरों के प्रति किये हैं उनसे अधिक अत्याचार दूसरों ने तुम्हारे साथ किये हैं। तुम्हारे जीवन के इतिहास से मैं कुछ भी परिचित नहीं हूँ, पर इतना मैं अवश्य सोच सकता हूँ कि तुम्हारे ढंग की लड़की सहज में ही किसी चकले में प्रवेश करना पसन्द नहीं कर सकती।"

"मुझे आप किस ढंग की लड़की समझते हैं?" उसने प्रायः फुसफुसाते हुए यह प्रश्न पूछा, पर मैंने सुन लिया। मैंने मन-ही-मन कहा—"भाड़ में जाय! मैं एक प्रकार से उसकी चापलूसी करने लगा हूँ! वास्तव में यह ढंग ठीक नहीं है। फिर भी, सम्भव है, इससे कुछ भलाई हो।"

मैंने कहा—"सुनो लीज़ा, मैं तुम्हें कुछ अपनी भी सुनाना चाहता हूँ। यदि मेरे माता-पिता मुझे बहुत छोटी अवस्था में अनाथ छोड़कर सिधार न गये होते, तो आज मैं ऐसा उच्छृंखल जीवन न बिताता। क्योंकि अपने घर में चाहे किसी को कैसा ही कष्ट क्यों न हो, फिर भी घर घर ही है—वहाँ शत्रुओं के विद्वेष, व्यंग और परिहास के विष-बुझे बाणों से छिदते रहने का भय नहीं रहता। माता-पिता चाहे कैसी ही रुखाई का वर्ताव करें, फिर भी उनकी उस रुखाई के भीतर प्रेम छिपा रहता है। पर मेरे भाग्य में माता-पिता की संरक्षकता में घर पर रहना नहीं बदा था, इसलिए आज मैं इस गति को पहुँच गया हूँ।

मेरे हृदय में स्नेह, प्रेम और करुणा की सब भावनाएँ नष्ट हो गयी हैं।"

यह कहकर मैं यह जानने के उद्देश्य से चुप हो रहा कि वह मेरी बात को किस रूप में ग्रहण करती है, और उसका क्या उत्तर देती है। पर वह चुप रही। मेरे मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि कहीं वह मेरे प्रत्येक कथन को हास्यास्पद न समझ रही हो! फिर भी मैं हतोत्साह न हुआ और कुछ समय बाद मैंने फिर बोलना आरम्भ कर दिया। इस बार एक दूसरा शिगूफ़ा मैंने छोड़ा। मैंने कहा—"यदि मैं बच्चों का बाप होता, और मेरी एक लड़की होती तो मैं उसे अपने बेटों से भी अधिक चाहता।"

यह बात कहते ही मैंने मन-ही-मन अत्यन्त लज्जा का अनुभव किया।

उसने पूछा—"क्यों?"

"कारण यह है कि—कुछ भी हो, कारण मैं ठीक नहीं बता सकता, लीज़ा। पर मैं एक ऐसे पिता को जानता हूँ जो अपनी बेटी को अपने प्राणों से भी अधिक चाहता है। वह वास्तव में बड़ा कंजूस है, पर अपनी बेटी की किसी भी इच्छा को वह अपूर्ण नहीं रहने देता और उसके लिए अपना सर्वस्व खर्च कर डालने के लिए वह सब समय तैयार रहता है। उसकी मनोभावना कितनी स्वाभाविक है, यह मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ। हाँ, मेरा पूर्ण विश्वास है कि लड़कियाँ अपने मा-बाप के साथ रहकर कभी दुखी नहीं रह सकतीं। यदि मेरी कोई लड़की होती, तो मैं कभी उसे विवाह करने की आज्ञा

न देता, क्योंकि अपने माँ-बाप के साथ वह जितने आराम से रह सकती है, अपने पति के साथ उतना आराम उसे कभी नहीं मिल सकता। इसके अलावा जो लड़की वर्षों तक अपने मायके में लाड़-प्यार से रही है, वह स्नेह के सब बन्धनों को तोड़कर दूसरे के घर चली जाय, यह मैं किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकता।"

वह बोली—"आपको पता नहीं है कि कुछ माँ-बाप अपनी लड़कियों को सामाजिक प्रथा के अनुसार न ब्याह कर उन्हें दूसरों के हाथ बेच डालते हैं!"

मैंने मन-ही-मन कहा—'अच्छा, असल बात यह है! समझा! इस छोकरी को भी इसके माँ-बाप ने बेच डाला है, इस बात को अभी तक छिपा रही थी!' प्रकट में बोला—"सुनो लीज़ा, तुम ठीक कह रही हैं; ऐसा भी कभी-कभी सम्भव होता है, पर केवल ऐसे परिवारों में इस प्रकार की ज़्यादती होती है जहाँ न प्रेम का आवास होता है न भगवान का। जो लोग प्रेम के अनुभव से वंचित हैं, उन्हें किसी भी बात के लिए हिचकिचाहट नहीं हो सकती। मैं यह अनुमान करता हूँ कि तुम्हारे माँ-बाप भी तुम्हारे प्रति विशेष स्नेहशील नहीं रहे हैं, और तुम्हें अपने घर में बहुत-से कष्ट झेलने पड़े हैं। इसके अलावा ग़रीबी भी मनुष्य को हृदयहीन बना देती है।"

"क्या सम्पन्न घरों की दशा कुछ दूसरी तरह की होती है? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि बहुत-से निर्धन गृहस्थ भी सम्मानपूर्ण जीवन बिताते हैं।

"हो सकता है । पर समाज के प्रति बाग़ी बनकर स्वतन्त्र जीवन बिताने वाली स्त्री को कभी नैतिक और आध्यात्मिक सुख प्राप्त नहीं हो सकता । मैं मानता हूँ कि विवाहित जीवन में भी बहुत दुःखों के उपजने की संभावना है। पर उसमें एक प्रकार का नैतिक और आध्यात्मिक सुख और सन्तोष भी है। अपने इच्छित व्यक्ति से जिस लड़की का विवाह हो जाता है, वह विवाह के बाद अपने पति से प्रथम मिलन के अवसर पर कैसे अपूर्व सुख का अनुभव करती है, क्या तुमने कभी इस बात पर भी सोचा हैं? विवाहित जीवन में पति-पत्नी के बीच झगड़ा भी होता है—पर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि उस झगड़े में भी सुख है। मैं एक ऐसी स्त्री को जानता हूँ जो अपने पति को प्राणों से भी अधिक चाहती है, और फिर भी उससे नित्य झगड़ती रहती है। ऐसी स्त्री अपने मन में कहती है—'चूँकि मैं उससे इतना प्रेम करती हूँ, इसलिए उसे तंग करने का भी मेरा अधिकार है; बल्कि सच बात तो यह है कि उसे इतना अधिक चाहने के कारण ही मैं उसे बात बात में परेशान किये रहती हूँ!' कुछ स्त्रियाँ अपने ईर्ष्यालु स्वाभाव के कारण अपने पतियों के प्राण संकट में किये रहती हैं। मैं एक ऐसी स्त्री को जानता हूँ जो अपने पति के घर से बाहर जाने पर एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं रह सकती थी, और अक्सर यह मालूम करने के लिए चुपके से उसके पीछे हो लेती (चाहे आधी रात का समय ही क्यों न हो) कि वह एक विशेष स्त्री के यहाँ जाता है या नहीं। वास्तव में वह जानती थी कि उसका पति किसी दूसरी स्त्री से प्रेम नहीं करता, पर यह जानते हुए भी वह एक

काल्पनिक ईर्ष्या का भाव सब समय अपने मन में जगाये रहती। यदि इस असत्य कल्पना का भूत उसके मन से हट जाता, तो वह बहुत बेचैन हो उठती। इस काल्पनिक ईर्ष्या के कारण वह अपने पति को बात-बात में परेशान किये रहती। पर यह होते हुए भी उसका प्रेम किसी से कम नहीं था। पति-पत्नी के झगड़े के बाद जब दोनों में फिर से मेल हो जाता है, तो कितना सुख दोनों को मिलता है, इसकी कल्पना तुम नहीं कर सकतीं, लीज़ा। इसलिए दाम्पत्य जीवन के झगड़े भी सुखमूलक होते हैं। यह कहा जाता है कि पति-पत्नी के प्रेम के परिणाम-स्वरूप जब स्त्री गर्भ-धारण करती है, तो वह एक आफ़त मोल लेती है। जो मूर्ख इस तरह की बात करते हैं वे नहीं जानते कि बच्चे की माँ बनने का सुख कितना बड़ा है। वास्तव में वह एक स्वर्गीय सुख है। लीज़ा, क्या तुम्हें बच्चे प्यारे नहीं लगते? मुझे तो वे बहुत ही प्यारे लगते हैं। ज़रा कल्पना करो कि यदि तुम्हारे एक बच्चा होता और तुम्हारी गोद में खेलता और किलकता रहता! तुम्हें कितना हर्ष होता! क्या कभी इस बात की कल्पना तुमने की है? माता बच्चे को गोद में लिए दूध पिला रही है, और उसका बाप वहाँ पर बैठा देख रहा है, और बीच-बीच में बच्चे को चुमकारता जाता है! बच्चा किलक-किलक कर गोद में उछलने की चेष्टा करता है। यह सारा दृश्य कितना आनन्ददायक है! इस प्रकार का सुख प्राप्त करने के लिए बड़ा से बड़ा त्याग भी तुच्छ है।"

मैं अपने मन में सोच रहा था—"इस प्रकार सरस, सुकुमार और सुखमय चित्र उसके सामने रखने से मैं निश्चय ही इस लड़की के

हृदय पर गहरा प्रभाव डालने में समर्थ हो सकूँगा।" पर सहसा अपनी लम्बी-चौड़ी बातों के कारण मैं स्वयम् लज्जित हो उठा। मैंने सोचा—"कौन कह सकता है कि मेरी लेकचरबाज़ी से उसके मन में हास्य का उद्रेक नहीं हो रहा है?" यह बात बहुत सम्भव थी, और सोच-सोच कर मुझे स्वयम् अपने ऊपर और लीज़ा के ऊपर बेहद क्रोध आने लगा था। वह चुप्पी साधे बैठी थी, और अँधेरा होने के कारण उसके मुख की अभिव्यक्ति से उसके हृदय की बात जानी नहीं जा सकती थी।

मैं मन-ही-मन खीझ रहा था। बहुत देर तक चुप रहने के बाद अन्त में उसने मौन भंग करते हुए पूछा—"ये सब बातें आपने क्या सोच कर कही हैं?" प्रश्न करते हुए उसका गला काँप रहा था। मैं तत्काल भाँप गया कि मेरी बातों ने उसके मर्म के किसी सुकुमार स्थान को निश्चय ही स्पर्श कर लिया है। यह जान कर मुझे प्रसन्नता अवश्य ही हुई, पर साथ ही उसके प्रति मेरे मन में कुछ करुणा का भाव भी जागरित होने लगा। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे उसके हृदय में दबे पड़े हुए सुकुमार, करुण और मार्मिक भावों को जगा कर मैं उसके प्रति अन्याय कर रहा हूँ।

मैंने कौतूहल के साथ कहा—"तुम्हारा आशय मैं ठीक समझा नहीं।"

"मुझे तो ऐसा लगता है जैसे आप किसी पुस्तक की बातें रट कर दुहरा रहे हों।" मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि इस सीधी और भोली लड़की के भीतर भी व्यंग का भाव छिपा हुआ था। उसकी इस व्यंगोक्ति से मैं बेतरह खीझ उठा। पर यह समझने में भी मुझे

देर न लगी कि मेरी बातों का जो गहरा प्रभाव उसके भीतरी मन पर पड़ा है उसे छिपाने के उद्देश्य से वह व्यंग कर रही है। पर इससे मेरी खीझ नहीं मिटी, और मैंने उसके व्यंग का बदला लेने के उद्देश्य से यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि उसके मर्म में छिपी हुई सब वेदनाओं को कुरेद-कुरेद कर बाहर निकालूँगा।

८

मैंने कहा—"सुनो लीज़ा, यदि मैं व्यभिचार के चक्करों से अपरिचित होता, तो मेरी बातों का मूल्य पोथी के बैंगनों के समान होता। पर मैं चूँकि तुम्हारे पास बैठा हुआ हूँ, इसी से तुम समझ सकती हो कि मैं इस प्रकार की गन्दगी में कितना डूबा हूँ। इस कारण इस विषय में मैंने जो बातें तुमसे कही हैं, उनका बड़ा मूल्य है। मेरी प्रत्येक बात मेरे हृदय से निकली है, पुस्तक से नहीं, यह तुम जान लो। तुम्हारी बात से मुझे यह सन्देह होने लगा है कि तुम अपने पतन के यथार्थ रूप से अभी तक अपरिचित हो। ऐसा जान पड़ता है कि इस दलदल में फँसकर तुम कीचड़ में ही रहने की आदी हो गयी हो, और तुम्हारी सुकुमार भावनाएँ ज़ंग खाकर जड़ बन गयी हैं। क्या तुम वास्तव में यह विश्वास करती हो कि तुम्हें कभी बुढ़ापा नहीं घेरेगा, और तुम अनन्त-यौवना और चिर-सुन्दरी बनी रहोगी? अभी तुममें ताज़गी वर्तमान है, और तुम सुन्दर भी हो। पर तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैंने ज्योंही शराब के नशे से छुटकारा पाया, त्योंही मैं तुमसे घृणा करने लगा। जब इस समय तुम किसी को आकर्षित करने में असमर्थ हो, तो बाद में तुम्हारी

क्या दशा होगी, इसकी कल्पना तुम सहज में कर सकती हो। यदि तुम इस चकले में न होतीं, यदि तुम शुद्ध जीवन विताती होतीं, तो बात ही दूसरी हो जाती। तब मैं निश्चय ही तुम्हारे प्रति आकर्षित हो उठता और प्रेम-निवेदन करता। तब तुम्हारा प्रत्येक शब्द, प्रत्येक हाव-भाव मेरे मन में आनन्द की तरंग उत्पन्न करता। तब मैं संसार के सामने यह घोषित करने में गर्व अनुभव करता कि तुम मेरी प्रियतमा हो। मेरे मन में तुम्हारे सम्बन्ध में एक भी अपवित्र भाव उत्पन्न न होता। पर जिस दशा में इस समय तुम हो, उस हालत में मैं केवल एक सीटी बजाते ही तुम्हें अपने पास बुला सकता हूँ। तुम्हारा मेरे पास आना या न आना तुम्हारी इच्छा पर नहीं, बल्कि मेरी इच्छा पर निर्भर करता है। एक साधारण मज़दूर भी जो अपने श्रम को बेचता है, तुमसे अच्छा है, क्योंकि वह जानता है कि एक न एक दिन उसे छुट्टी मिल जायगी। पर तुम्हें कब छुट्टी मिलेगी? ज़रा सोचो! क्यों तुमने अपने को इस घृणित दासत्व के बन्धन में मृत्यु तक के लिए बाँध लिया? केवल अपने शरीर को ही नहीं, अपनी आत्मा को भी तुमने वज्र-बन्धन में बँधवा लिया है। गुंडों, लफंगों और शराबियों के हाथ तुम्हें प्रेम वेचना पड़ता है, जब कि प्रेम को पवित्रता की ओर ले जाने से तुम स्वर्गीय प्रकाश का अनुभव कर सकती हो! प्रेम की मिट्टी खराब करके तुमने कितना महान अपराध किया है, तुम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकतीं। मैंने सुना है कि तुम्हारी तरह की स्त्रियों को कभी-कभी अपने इच्छित व्यक्ति से प्रेम करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। पर जब तक तुम चकले के भीतर हो, तब

तक कोई भी प्रेम सच्चा प्रेम नहीं हो सकता। क्योंकि जो व्यक्ति तुम्हारे प्रति प्रेम प्रदर्शित करेगा, वह इस बात के प्रति कभी उदासीन नहीं रह सकता कि तुम्हें किसी भी क्षण किसी भी दूसरे व्यक्ति के बुलाने पर उसके पास जाने को बाध्य होना पड़ेगा। यह सब जानते हुए ऐसा व्यक्ति कभी तुम्हें श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से नहीं देख सकता। वह केवल तुम्हें धोखा देकर तुम्हारी गाँठ काटने के सिवा और कुछ नहीं कर सकता। यदि वह किसी दिन तुम्हारा गला घोंट-कर तुम्हारी हत्या न कर डाले, तो तुम्हें अपने को भाग्यशालिनी समझना चाहिए। ऐसे आदमी के आगे यदि तुम कभी यह संकेत भी करो कि वह तुमसे विवाह करे, तो वह तुम्हारे मुँह पर हँसेगा ही नहीं, बल्कि तुम्हारे मुँह पर घृणा से थूक देगा। और यदि वह तुम्हें धोखा देने के लिए विवाह कर भी ले तो विवाह के बाद ही तुम्हारी हत्या कर डालेगा। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि इस चकले में पतित जीवन बिताने पर भी तुम दरिद्र अवस्था में हो। तब किस लोभ से तुमने इस कीचड़ में अपने को डुबो दिया? क्या केवल इसीलिए कि तुम्हें यहाँ खाने को रोटी मिलती है और पीने को क़हवा? अपने शरीर और आत्मा को बेचकर तुम्हें यह जो साधारण भोजन मिलता है वह तुम्हारे गले से होकर नीचे उतरता कैसे है? तिसपर तुम अपनी मालकिन की क़र्ज़दार हो, और यह बात ध्रुव निश्चित है कि मरते समय तक तुम पर यह क़र्ज़ बना रहेगा। कारण यह है कि जब इस भरी जवानी में तुम ऋण में डूबी हुई हो, तो जब तुम्हारा यौवन नष्ट हो जायगा। तब वह कैसे पट सकता है! याद रखो, वह दिन

मेलगाड़ी की रफ़ार से आवेगा। तब किस उपाय से तुम उससे मुक्त हो सकोगी? बाईस वर्ष की अवस्था में तुम बयालीस वर्ष की दिखायी दोगी, और यदि उस अवस्था में तुम्हें क्षय रोग न घेर ले, तो तुम्हें भगवान को धन्यवाद देना चाहिए। शायद तुम्हारा यह खयाल हो कि तुम्हें यहाँ कोई काम नहीं करना पड़ता, और तुम्हें नित्य छुट्टी रहती है। अभागिनी नारी! मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि सारे संसार में तुम्हारे से अधिक भयंकर और वीभत्स पेशा और किसी का नहीं है। यदि तुम तनिक भी इस विषय पर सोचो, तो तुम्हारा दिल दहल उठेगा, और आत्मा असह्य पीड़ा से कराह उठेगी। और जब तुम रूप और यौवन नष्ट होने पर इस मकान से निकाल दी जाओगी, तो तुम अपनी सफ़ाई में एक शब्द भी नहीं कह सकोगी। सदा के लिए समाज और संसार से वहिष्कृत होकर तुम मारी-मारी भटकती फिरोगी। एक चकले से दूसरे चकले में जाओगी, और वहाँ से तीसरे में। वहाँ से तुम निश्चय ही निकाल दी जाओगी, और अन्त में बाध्य होकर तुम्हें सेनाइया स्ट्रीट के गन्दे और सील से भरे हुए मकान की सबसे नीचे की मंजिल में जीवन बिताकर भ्रष्ट और गलित पुरुषों की सेवा में जीवन बिताना पड़ेगी। वहाँ जो नारकीय जीवन तुम्हें बिताना पड़ेगा, उसकी कल्पना भुक्त-भोगी के सिवा दूसरा नहीं कर सकता। वहाँ तुम दुर्गति की परम सीमा को पहुँच जाओगी, और सड़-गल कर मरने को बाध्य होगी। एक बार जब मैं उस स्थान से चला आ रहा था, तो मैंने वहाँ एक मकान के दरवाज़े पर एक स्त्री को देखा। उसके साथ

की दूसरी स्त्रियों ने उसे इसलिए बाहर निकाल दिया था कि वे उसका रोना सहन नहीं कर पाती थीं। भयंकर सर्दी पड़ रही थी, और वह बेतरह ठिठुर रही थी; पर इस बात पर तनिक भी ध्यान न देकर उस के साथ की लड़कियाँ उसे भीतर नहीं आने देती थीं। रात के नौ बज चुके थे, और वह अर्द्धनग्नावस्था में अधमरी सी होकर दरवाज़े के बाहर बैठी हुई व्याकुल होकर बेज़ार रो रही थी। उसकी मालकिन और उसकी साथिनों ने उसे बुरी तरह पीटा था। उसकी नाक से और दाँत के मसूड़ों से निरन्तर खून निकल रहा था, उसकी आँखों का सुरमा धुल-धुल कर पौडर से रंजित गालों से होकर काली-काली रेखाओं में नीचे बह रहा था। उसकी सारी आकृति अत्यन्त भयानक मालूम होती थी। उसने शराब पी रखी थी, और उसके हाथ में मछली का एक टुकड़ा था। उस टुकड़े से वह दरवाज़े पर आघात करती हुई विलाप कर रही थी और प्रलाप बक रही थी। कुली मज़दूर, गाड़ीवान और सिपाही तमाशा देखने के उद्देश्य से उसे चारों ओर से घेरे हुए थे, और भड़काते जाते थे। उस आतंककारी दुर्दशा का पूरा वर्णन नहीं हो सकता। निश्चय ही तुम उस दशा को प्राप्त होना नहीं चाहोगी; क्यों? पर तुम्हें बाध्य होकर एक दिन उसी स्थिति को पहुँचना होगा। कौन कह सकता है कि जो लड़की मछली का टुकड़ा हाथ में लिये हुए रो रही थी वह एक दिन तुम्हारी ही तरह सुन्दरी, निष्पाप सरल-स्वभाव, और सहृदय नहीं थी! बहुत सम्भव है वह भी तुम्हरी ही तरह भावुक और अभिमानिनी रही होगी, और अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में रंगीन कल्पनाओं के जाल

चुनती होगी। पर जब वास्तविकता से उसका संघर्ष हुआ तो उसकी क्या गति हुई. जरा कल्पना करो! जब वह मछली के टुकड़े से दरवाज़े को पीट रही होगी, तो निश्चय ही उसके मन में अपने पूर्व जीवन की स्मृति जागती होगी। बचपन में अपने माँ-बाप का दुलार, स्कूल के जीवन में अपनी सखी-सहेलियों का स्नेह, और फिर प्रेमिक के साथ प्रथम मिलन! उसके प्रेमिक ने उसे निश्चय ही यह आश्वासन दिया होगा कि वह अन्त तक उसका साथ देगा, और उसे आजीवन नहीं छोड़ेगा। उस आश्वासन में अनन्त आनन्द का कैसा स्वप्न-लोक उस अभागिनी की आँखों के सामने उद्घाटित न हुआ होगा! तब वह क्या जानती थी कि एक दिन उसे सेनाइया स्ट्रीट के नरकालय में भरती होना पड़ेगा और अन्त में वहाँ भी ठौर न मिलेगी! लीज़ा, यदि कल ही तुम्हारी मृत्यु हो जाय, तो तुम उसे अपना परम सौभाग्य समझो। जो लड़की उस दिन सेनाइया स्ट्रीट में क्षयरोग से मरी थी, उसकी दशा भी उतनी शोचनीय नहीं थी, जितनी तुम्हारी हो सकती है। तुमने अभी कुछ समय पहले मुझसे कहा था कि तुम अस्पताल में जाकर मरोगी। पर तुम्हें पता नहीं कि तुम पर तुम्हारी मलकिन का क़र्ज़ा चढ़ा हुआ है और इस कारण तुम्हें अस्पताल में भर्ती नहीं किया ज़ा सकता। इसके अलावा, क्षयरोग ऐसी बीमारी नहीं है जो न्यूमोनिया की तरह शीघ्र ही रोगी के प्राण हर ले। वह धीरे-धीरे अपना विषैला प्रभाव दिखाता है, और रोगी अन्त तक यह समझता हैं कि वह शीघ्र ही अच्छा हो जायगा। बहुत सम्भव है कि तुम्हें क्षयरोग ने अभी घेर लिया हो, और तुम्हें इसका पता तक न हो!

पता लगने पर भी तुम बराबर इस आशा में अपने आप को धोखा देती जाओगी कि शीघ्र ही तुम्हारा खोया हुआ स्वास्थ्य लौट आयगा, और किसी अलौकिक आश्चर्यमय उपाय से तुम मालकिन के ऋण से मुक्त हो जाओगी। पर तुम्हारी यह दुराशा मरते दम तक सफल नहीं हो सकती, यह निश्चय है। तुम्हें लोग चैन से मरने भी नहीं देंगे। जब तुम प्यास से बेचैन होकर पानी माँगोगी तो तुम्हें पानी के साथ घोर दुर्वचन सुनने को मिलेंगे। तुम से कहा जायगा—'तू ज़ल्दी मर भी नहीं सकती। चंडालन कहीं की ! तेरी कराहों के कारण रात भर हम लोगों को नींद नहीं आती, और जो ग्राहक यहाँ आते हैं वे उकता कर चले जाते हैं।' मैंने अपने कानों से इस तरह की बातें सुनी हैं। अन्त में जब तुम्हारी मृत्यु का समय निकट आयेगा, तो तुम्हें एक गन्दी और दुर्गन्ध से भरी हुई कालकोठरी में फेंक देंगे। वहाँ गीले फ़र्श में और घनघोर अन्धकार में पड़ी-पड़ी तुम सड़ोगी। अन्त में जब तुम मरोगी, तो तुम्हारी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना के मन्त्र नहीं पढ़े जायेंगे, बल्कि तुम्हारी अर्थी के ऊपर गालियाँ, दुर्वचन और अभिशापपूर्ण वाक्यों की वर्षा होगी। कोई तुम्हारे नाम को नहीं रोयेगा। एक दलदल में तुम्हारी लाश गाड़ी जायगी, और गन्दे कीचड़ में सड़ने को छोड़ दी जायगी। क़ब्रिस्तान के मज़दूर उस गढ़े को थोड़ी-सी मिट्टी से ढकते हुए कहेंगे—'जाओ, परलोक में भी शैतान के यहाँ रह कर चकलेबाज़ी करना !' इसके बाद इस संसार से तुम्हारा नामोनिशान इस तरह मिट जायगा, जैसे तुम कभी इस पृथ्वी पर थी ही नहीं। किसी भी व्यक्ति के मन में कभी एक क्षण के लिए भी

तुम्हारी स्मृति नहीं जगेगी। रात को तुम्हारी प्रेतात्मा उस सुनसान क़ब्रिस्तान के ऊपर खड़े होकर कराहती हुई कहोगी—'भले आदमियो! मुझे संसार में और कुछ समय के लिए जीवित अवस्था में विचरने दो! मैं जब तक जीवित रही, तब तक एक दिन के लिए भी जीवन के वास्तविक आनन्द से परिचित न हो सकी, क्योंकि मेरा जीवन दूसरों की कामुकता को पोंछने के लिए केवल एक झाड़न के बतौर रहा है। मेरा सारा रूप और यौवन सेनाइया स्ट्रीट की नारकीय गन्दगी में सड़-गल कर समाप्त हो गया। भले आदमियो, मुझे और कुछ समय तक जीवित जगत् के अनुभव प्राप्त करने दो!'

उसके आगे इस प्रकार का करुण चित्र रखने की चेष्टा करते हुए स्वयम् मेरा गला भर आया, और कहीं मेरी भर्राई हुई आवाज़ से मेरी दुर्बलता व्यक्त न हो पड़े, इस आशंका से मैं चुप रह गया। मेरा हृदय जोरों से धड़कने लगा, और मैं एक प्रकार की घबराहट का-सा अनुभव करने लगा था।

बहुत देर से मेरे मन में यह सन्देह विश्वास का रूप धारण करने लगा था कि मेरे भावुकतापूर्ण उद्गार लीज़ा की आत्मा पर एक गहरा और मार्मिक प्रभाव डालने में समर्थ हो रहे हैं। यह भय भी मेरे मन में घर करने लगा था कि मेरी बातों से निश्चय ही लीज़ा के हृदय में हाहाकार मचने लगेगा। पर यह सब कुछ जानते हुए भी मैं क्यों अधिक से अधिक कड़वी बातें कह कर उसके सामने अत्यन्त मर्मभेदी और करुणतम चित्र उद्घाटित करता जाता था, यह बात स्वयम् मेरी समझ में नहीं आती थी। वास्तव में यह केवल

एक खेल था—शिकारी का शिकार ! इस निष्ठुर खेल में मैं ऐसा रम गया था कि और किसी भी बात पर ध्यान देने की सुधि ही मुझे नहीं थी। पर अकस्मात् मैंने जब लीज़ा का रंग-ढंग देखा, तो मैं घबरा उठा। ऐसा भयंकर प्रभाव उस पर पड़ेगा, इसकी कल्पना मैंने नहीं की थी। उसने अपना सिर तकिये में छिपा लिया था, और दोनों हाथों से वह उस तकिये को दबाए हुए थी। उसका सारा शरीर सिर से लेकर पाँव तक सिसकियों के कारण सिहर-सिहर उठता था। कुछ समय बाद अपने मर्मच्छेदी क्रन्दन को दबाना उसके लिए असम्भव हो गया। फिर भी वह तकिये से अपने मुँह को दबाने की भरसक चेष्टा करने लगी कि कहीं उसकी कराह दुर्निवार वेग से फूट न न पड़े। पर इस चेष्टा में उसे विशेष सफलता न मिली और रह-रहकर उसकी आत्मा का अत्यन्त करुण चीत्कार बाहर प्रकट हो रहा था। उसके हताश भाव ने ऐसा विकट रूप धारण कर लिया था कि वह अपने दाँतों से तकिये का खोल फाड़ रही थी; और उससे भी सन्तुष्ट न होकर वह अपनी उंगलियों को अपने दाँतों से काटने लगी, यहाँ तक कि उनसे ख़ून निकल आया। इसके बाद दोनों हाथों से अपने बालों को पकड़कर खींचने लगी। अन्त में चकित होकर वह स्तब्ध और निश्चल अवस्था में लेट गयी, और अपने दाँतों को पीसने लगी !

मेरी समझ ही में कुछ नहीं आता था कि मैं उसे किस तरह समझाऊँ। कोई उपाय न देखकर अन्त में मैं बिस्तर पर से उठ खड़ा हुआ। मेरा इरादा कपड़े पहन कर चुपचाप बाहर चले जाने

का था। पर कमरे में ऐसा घन अन्धकार छाया हुआ था कि मैं एक क़दम आगे नहीं बढ़ पाता था। हाथ से इधर-उधर टटोलने पर बड़ी मुश्किल से दियासलाई की एक डिबिया मेरे हाथ लगी। उसे जलाकर मैंने एक स्थान में पड़ी हुई एक नयी मोमबत्ती उठायी। ज्योंही मैंने उसे जलाया कि लीज़ा ने अपना सिर उठाकर अत्यन्त करुण भाव से मेरी ओर देखा। उसके मुख में मुसकान की एक झलक अवश्य वर्तमान थी, पर वह एक पागल नारी की विकृत और दिल दहलाने वाली मुसकान थी। मैं फिर उसके पास जाकर उसकी बग़ल में बैठ गया और मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। मुझे ऐसा जान पड़ा कि एक बार वह मुझे आलिंगन करने को उद्यत हुई, पर तत्काल कुछ समय पहले की सब बातें याद करके उसे साहस न हुआ और वह केवल मेरा माथा चूमकर रह गयी।

मैंने कहा—"लीज़ा, भोली लीज़ा, मैं जो लम्बी-लम्बी बातें तुम्हें सुनाता रहा हूँ, उन्हें भूल जाओ। वे मेरे हृदय से निकली हुई बातें नहीं थीं। मैं उनके लिए तुमसे क्षमा चाहता हूँ।"

इसपर उसने मेरे हाथों को इस मज़बूती से धर दबाया कि उसका मनोभाव मुझसे छिपा न रहा। इसके बाद कुछ बोलने का साहस मुझे न हुआ। कुछ क्षण तक मौन बैठे रहने के बाद मैंने कहा—"लीज़ा, यह लो मेरा पता। किसी दिन मेरे पास आकर मुझसे मिलना।"

"हाँ, मैं अवश्य आऊँगी।" यह कहकर उसने अपना सिर नीचे को कर लिया।

"अच्छा, अब मैं जाता हूँ। फिर मिलेंगे।" यह कहकर मैं उठा, और वह भी उठ खड़ी हुई। मैंने देखा कि उसके मुख में लज्जा के कारण एक रक्ताभा झलक उठी। इसके बाद उसने एक कुर्सी पर पड़ा हुआ अपना शाल उठाया और उससे अपने सारे शरीर को लपेट लिया। यह करते हुए उसने एक अर्द्ध-विज्ञप्ति दृष्टि एक मर्म-भेदी मुसकान से मेरी ओर देखा। उसके मुख का विचित्र भाव देख-कर मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुँची। मैं यथाशीघ्र उसके पास से भागने की चेष्टा करने लगा। वहाँ से मैं बाहर के कमरे में चला गया।

अकस्मात् वह बोल उठी—"ज़रा ठहरना!" और पीछे आकर खड़ी हो गयी। मैं अपना ओवरकोट पहन रहा था। उसके हाथ में एक मोमबत्ती थी। मोमबत्ती के प्रकाश में मैंने देखा कि उसका मुख आश्चर्यजनक रूप से लाल हो आया था, और उसकी आँखें एक असाधारण दीप्ति-से चमक रही थीं। कुछ देर बाद मोमबत्ती उसी कमरे में रख कर वह फिर दौड़ती हुई भीतर चली गयी। मैंने सोचा कि शायद वह कोई चीज़ मुझे दिखाना चाहती है। मैं ठहरा रहा। वह तत्काल लौट कर फिर उसी कमरे में चली आयी। इस समय उसकी आँखों में एक अत्यन्त विनम्र और प्रार्थना-सूचक भाव वर्तमान था। इसके पहले मैंने उसके मुख में जो एक अत्यन्त विषादपूर्ण, सन्दिग्ध और रूखा भाव देखा था उसका लेश भी इस समय नहीं दिखायी देता था। इस समय उसकी दृष्टि में एक सरस-स्निग्ध सुकुमारता व्यक्त हो रही थी और प्रेम-निवेदन का-सा लज्जा-मधुर भाव झलक रहा था। वह एक ऐसे बच्चे की-सी दृष्टि थी, जो

अत्यन्त उत्सुकता से अपने किसी प्रियजन की ओर इस आशा से देख रहा हो कि उसे कोई उपहार मिले। ऐसी उद्दीप्त उमंगपूर्ण आँखें मैंने जीवन में दो-एक बार ही देखी हैं।

बिना एक शब्द बोले हुए उसने एक काग़ज़ मेरी ओर बढ़ा दिया। उस काग़ज़ को मेरे हाथ में देते हुए उसके मुख में विजय का उल्लास छाया हुआ था। मैंने उस काग़ज़ को खोल कर पढ़ा। वह मेडिकल कालेज के किसी एक छात्र का पत्र था। उस पत्र में छायावादी भाषा में यह भाव व्यक्त किया गया था कि वह लीज़ा को सच्चे हृदय से चाहता है। पत्र की भाषा काव्यात्मक होने पर भी उसके भीतर से सचाई और सहृदयता की ध्वनि व्यक्त हो रही थी। पत्र पढ़ चुकने के बाद मैंने लीज़ा की ओर देखा। उसकी दृष्टि में इस समय अत्यन्त उत्सुकता और अधीरता वर्तमान थी। वह स्पष्ट ही यह जानना चाहती थी कि उस पत्र को पढ़ कर मैं अपनी क्या राय देता हूँ। मैं सोच रहा था। मेरे उत्तर में विलम्ब देख कर उसने अत्यन्त शीघ्रता के साथ मुझे सूचित करते हुए कहा—"कुछ दिन पहले मैं किसी 'भले घर' में एक नाच में शरीक हुई थी। उस घर के लोगों को इस बात का कुछ भी पता नहीं था कि मैं किस प्रकार का जीवन बिता रही हूँ। वहाँ एक मेडिकल कालेज के छात्र से मेरा परिचय हो गया। उस दिन मैं रात में बहुत देर तक उसके साथ नाचती और बातें करती रही। वह छात्र मुझे छुटपन में जानता था और जब मैं रीगा में अपने माँ-बाप के साथ रहती थी, तो वह मेरे साथ खेला करता था। वह नहीं जानता था कि इस समय मेरा पतन किस

रूप में हुआ है। दूसरे दिन उसने मुझे यह पत्र लिखकर भेजा। उसका मित्र पत्र लेकर मेरे पास आया था। उसके मित्र को यह जानने में देर न लगी कि मैं किस प्रकार का जीवन बिता रही हूँ। बस, मामला वहीं पर समाप्त हो गया।" अपना कथन समाप्त करते ही उसने संकोच और घबराहट के कारण आँखें नीची कर लीं।

बेचारी अबोध लड़की! इस पत्र को एक परम निधि के बतौर वह अत्यन्त सुरक्षित अवस्था में अपने पास रखे थी। मुझे वह पत्र दिखाने का उद्देश्य यह रहा होगा कि दूसरों के हृदय में सच्चा प्रेम जागरित करने की क्षमता में वह किसी से कम नहीं है, यह बात मैं भी जान जाऊँ। स्पष्ट ही वह पत्र बिलकुल निष्फल और व्यर्थ था, पर यह जानते हुए भी उसके लिए उसका मूल्य बहुत अधिक था। संसार में कम-से-कम एक व्यक्ति ने सच्चे हृदय से और निःस्वार्थ भाव से उसे अपना प्रेम जताया है, इस बात की स्मृति—केवल स्मृति—उसके मन पर अमिट प्रभाव अंकित कर चुकी थी। इसीलिए गर्व के साथ उस अमूल्य निधि को वह मेरे पास लाई थी! स्पष्ट ही वह यह प्रमाणित करना चाहती थी कि वह उतनी घृणित नहीं है, जितना मैंने उसे समझा है। वह मुझसे इस सम्बन्ध में बधाई की आशा रखती है, ऐसा जान पड़ता था। पर मैं कुछ न बोला। मैं जाने की हड़बड़ी में था।

बाहर बर्फ़ के बड़े-बड़े कण सफ़ेद फूलों की वर्षा कर रहे थे। मैं अपने मकान की ओर पैदल चला गया। यद्यपि मैं बहुत थकित

और चकित था, तथापि मेरे अन्तस्तल में एक आश्चर्यजनक सत्य प्रस्फुटित होने लगा था। पर वह सत्य मुझे सुखकर प्रतीत नहीं हो रहा था !

९

घर पहुँचने पर मैं उस सत्य को अस्वीकार करने की चेष्टा करता रहा। पर प्रातःकाल जब एक प्रगाढ़ निद्रा के बाद मेरी आँखें खुलीं, तो रात की सब बातें याद करते हुए मुझे इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि लीज़ा के प्रति मैंने कैसी असम्भव भावुकता का प्रदर्शन किया। मैं अपने-आप को लक्ष्य करके कहने लगा—"चकले के जीवन की जिस वीभत्सता का वर्णन मैंने किया उसकी क्या आवश्यकता थी? जो करुणा मैंने दर्शायी, वह कैसी मूर्खतापूर्ण थी! क्या एक बुढ़िया स्त्री की तरह स्वभाविक दुर्बलता ने मुझे घेर लिया है? और उसे अपना पता देने की मूर्खता मैंने क्यों की? उसने कहा था—'मैं आऊँगी।' यदि वह सचमुच आ खड़ी हो, तब? अच्छी बात है, आने दो उसे! देखा जायगा।"

पर कुछ ही समय बाद मैं लीज़ा की बात भूल गया, और यह चिन्ता मेरे लिए मुख्य हो उठी कि ज़ीर्कोव और सिमोनोव की आँखों में फिर से अपनी प्रतिष्ठा क़ायम रखने की चेष्टा मुझे करनी होगी। इसके लिए सब से पहली आवश्यक बात यह थी कि सिमोनोव से कल रात मैंने जो क़र्ज़ा लिया था उसे वापिस कर दिया जाय। इस काम को पूरा करने के लिए मैंने एक अत्यन्त अप्रिय उपाय का सहारा पकड़ने का निश्चय किया। मैंने एन्टन एन्टोनिच से पन्द्रह रुबल क़र्ज़ लेने का

पक्का विचार कर लिया। मेरे सौभाग्य से उस दिन एन्टन एन्टोनिच का मिज़ाज बहुत अच्छा था, और उसने बिना आपत्ति के तत्काल पन्द्रह रूबल मुझे दे दिये।

घर वापिस आने पर मैंने उसी दम सिमोनोव को एक पत्र लिखा। पत्र लिखने के पहले मुझे भय था कि न मालूम क्या-क्या अंड-बंड बातें मैं लिख बैठूँगा। पर भगवान् को धन्यवाद है कि मैंने अत्यन्त शान्त चित्त से पत्र लिखा। मैंने अपने पिछले दिन के व्यवहार के लिए उससे क्षमा माँगी, और साथ ही यह भी लिखा कि दूसरे साथियों से और विशेष करके ज़ीर्कोव से मेरी ओर से क्षमा-प्रार्थना करे। इसके बाद मैंने लिखा—"पिछले दिन मैं जिन-जिन व्यक्तियों से मिला और जो-जो घटनाएँ उनके साथ घटीं वे सब मुझे इस समय एक दुस्स्वप्न के समान लग रही हैं। पर ज़ीर्कोव को मैंने अपमानित किया, इस सम्बन्ध में कोई भ्रम मेरे मन में नहीं है। कुछ भी हो, ज़ीर्कोव से मैं विशेष रूप से क्षमा चाहता हूँ। मैं स्वयम् उसके पास जाता, पर इस समय मेरे सिर में बहुत दर्द है, और मेरी आत्मा ग्लानि से पीड़ित है।"

इस प्रकार अपने सम्मान और मर्यादा की पूरी रक्षा करते हुए मैंने सन्तोषजनक रूप से सारे मामले को सुलझा दिया। अपने लिखे हुए पत्र को मैंने दुबारा, तिबारा पढ़ा, और पढ़ते हुए अपनी योग्यता पर मैं स्वयं फ़िदा हुआ जाता था। मैं मन-ही-मन कहने लगा—"कैसा सर्वांग-सुन्दर, शिष्टतापूर्ण और नीति से भरा हुआ पत्र मैंने लिखा है! जिन लोगों ने कल मेरा अपमान करके मेरे व्यक्तित्व को

कुचलने की चेष्टा की और यह सिद्ध करना चाहा कि मैं एक अत्यन्त तुच्छ प्राणी हूँ, वे इस पत्र को पढ़ कर समझेंगे कि अन्त में विजय मेरी ही रही ! मेरे स्थान में यदि कोई दूसरा होता, तो वह इस जटिल जाल से अपने को इतने अच्छे ढंग से मुक्त करने में कभी सफल न होता। पर मैं एक प्रतिभाशाली सुसंस्कृत व्यक्ति हूँ और मार्मिक दृष्टि रखता हूँ।"

उस चिट्ठी के भीतर छः रूबल बन्द करके मैंने अपने नौकर एपोलन को उसे सिमोनोव के पास पहुँचाने का आदेश दिया। जब एपोलन को मालूम हुआ कि उस पत्र के भीतर कुछ रुपया है, तो शायद उसे यह भरोसा हुआ कि इस बार मेरे पास काफ़ी रुपया है, और उसका वेतन देने में कोई आनाकानी मैं नहीं करूँगा। इसी खयाल से वह मेरे साथ बड़े अदब से पेश आया और पत्र लेकर चला गया। संध्या को मैं टहलने के उद्देश्य से बाहर निकला, क्योंकि पिछली रात की घटनाओं के कारण मेरा सिर अभी तक भिन्ना रहा था, और जी ठीक नहीं था। ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता गया मैं विचित्र विभ्रान्तिपूर्ण भावनाओं में मग्न होता चला गया। मेरे हृदय के अन्तःप्रदेश में एक ऐसी अज्ञात रहस्यमय भावना तिलमिला रही थी, जैसे शरीर का कोई स्थान जल जाने पर होता है। इस प्रकार की विचित्र अनुभूति को भुलाने के लिए मैं सदा भीड़ में—विशेष कर मज़दूरों की भीड़ में, जब कि वे सन्ध्या को काम से छुट्टी पाने पर अपने-अपने घरों को वापिस जाते है, जा मिलने का आदी रहा हूँ। पर उस दिन भीड़ में शामिल होने पर मेरी मानसिक स्थिति और अधिक भड़क उठी

और मेरी चिन्ताधारा में विघ्न पहुँचने से मुझे कष्ट होने लगा। अन्त में मैं इस क़दर उत्यक्त हो उठा कि घर की ओर वापस चला गया। मेरे मन के भीतर एक घोर अपराध की सी अनुभूति जागरित हो रही थी।

लीज़ा न जाने कब और किस समय मेरे यहाँ आ धमके, इस चिन्ता से मैं बहुत घबराया हुआ था। यह बात वास्तव में आश्चर्य-जनक थी कि पिछली रात की सब स्मृतियों में लीज़ा की स्मृति एक विशेष रूप से, एक ज़बर्दस्त शक्ति के साथ, मेरे मन को डाँवाडोल कर रही थी। उसके अतिरिक्त और बातें मेरे चित्त से हट चुकी थीं, क्योंकि सिमोनोव को जो पत्र मैं भेज चुका था उसने अन्य सब कटु स्मृतियों को पोंछ-सा दिया था। केवल लीज़ा की याद रह-रह कर मुझे उद्विग्न कर रही थी। मैं सब समय घबराहट के साथ यह सोच रहा था कि यदि लीज़ा सचमुच आ जाय, तो मैं क्या करूँगा? फिर सोचता—"अच्छी बात है, यदि वह आना ही चाहती है तो आवे! वह मेरा बिगाड़ ही क्या सकती है। पर एक बात है—मेरा रहन-सहन जिस ढंग का है, उसे वह आकर देखे, यह मैं सहन नहीं कर सकूँगा। कल रात मेरी बातें सुन कर उसके मन पर निश्चय ही यह प्रभाव पड़ा होगा कि मैं एक महापुरुष हूँ; पर जब मेरे यहाँ आकर अपनी आँखों से देखेगी कि मैं किस घोर दरिद्रता में डूबा हुआ दीन-हीन जीवन बिता रहा हूँ, तो उसका मनोभाव क्या होगा? वह आयेगी, तो बैठेगी कहाँ? मेरे सोफा का यह हाल है कि उसके भीतर की फूस सब बाहर निकली हुई। न कोई कुर्सी साबूत है, न

मेज़। मेरे सब कपड़े फटे, पुराने और मैले पड़े हुए हैं। उन्हें देख कर उसके मन में क्या धारणा उत्पन्न होगी! इसके अतिरिक्त जब वह मेरे दुष्ट नौकर एपोलन का व्यवहार देखेगी तो क्या सोचेगी? निश्चय ही वह बदमाश लीज़ा को देखते ही उसका अपमान करेगा, और जान-बूझ कर उससे झगड़ा मोल लेगा। और मैं अपना फटा हुआ ड्रेसिंग गाउन पहने लीज़ा को मनाता रहूँगा, निरन्तर झूठ बोलता रहूँगा, और मूर्खों की तरह हँसता रहूँगा। उफ़! उस समय की मेरी दीन-दशा देखने योग्य होगी! पर केवल यहीं पर सब बातों का अन्त नहीं हो जायगा। मैं निश्चय ही कोई ऐसा कांड कर बैठूँगा जो मेरे स्वभाव की घोर नीचता और ढोंग का पर्दाफ़ाश कर देगा।"

इस विचार ने मेरे क्रोध के भाव को और अधिक बढ़ा दिया। कुछ देर बाद मैंने फिर सोचा—"पर मैं अपने कल के आचरण को नीचता और ढोंग से भरा कैसे कह सकता हूँ? कल मैंने लीज़ा से जो कुछ कहा उसमें सहृदयता भरी हुई थी। मैं उसकी नीच प्रवृत्तियों को ऊपर उठाकर उसे उन्नति की ओर प्रेरित करना चाहता था। मेरी बातें सुनकर वह जो बिलख-बिलख रोई यह अच्छा ही हुआ। उससे उसके भीतर के बहुत से पाप निश्चय ही धुल गये होंगे।"

पर इस तरह के विचार से मेरे मन को सन्तोष नहीं होता था। एक पल के लिए भी लीज़ा की करुण मूर्ति, उसकी आँखों का विह्वल, व्याकुल भाव मेरी आँखों के आगे से हटता नहीं था। जब गहन अन्धकार के बीच में उसने दियासलाई जलाई थी, तो उस समय उसका जो त्याग और आत्म-बलिदान का भाव व्यक्त करने

वाले रूप की झलक मुझे दिखाई दी थी उसे मैं किसी तरह भी भुला नहीं पाता था। उस समय उसके होठों में कैसी विचित्र और दयनीय मुसकान वर्तमान थी! तब मुझे पता नहीं था कि पन्द्रह वर्ष बाद भी उसका उस समय का रूप मेरी मानसिक आँखों के आगे भासमान होता रहेगा।

दूसरे दिन जब मैं नींद से जगा, तो लीज़ा की जिस स्मृति ने मुझे रात भर विकल और विह्वल कर रखा था, वह मुझे अत्यन्त मूर्खतापूर्ण और हास्यास्पद-सी लगने लगी। मैं मन को यह कहकर समझाने लगा कि मेरे मस्तिष्क की दुर्बलता के कारण भावुकता ने मुझे प्रबल रूप से धर दबाया था। मैं मन ही मन कहने लगा—"किसी भी बात को बतंगड़ बनाने की मेरी पुरानी आदत है। अपने दुःखों को भी बढ़ाकर मैं उन्हें विराट रूप दे देता हूँ। यह एक बड़ा भारी अवगुण मुझमें है।"

पर इस तरह अपने मन को समझाने पर भी मैं प्रतिपल लीज़ा के आने की प्रतीक्षा धड़कते हुए हृदय से कर रहा था। अपने कमरे में टहलते हुए मैं सोच रहा था—"वह निश्चय ही आवेगी। आज नहीं तो कल। इस तरह की लड़कियों की भावुकता से मैं भली-भाँति परिचित हूँ। वे मूर्ख होती हैं, और वास्तविकता से कोसों दूर रहती हैं। मैंने जो बातें उससे कहीं उन्हें सुनकर वह कभी उदासीन नहीं रह सकती, और सदा के लिए उन्हें गाँठ बाँधे रहेगी! कैसी मूर्खता है! केवल कुछ सस्ती भावुकता भरी किताबी बातें सुनकर एक हृदय में क्रान्तिकारी परिवर्तन की लहरें उमड़ उठें, यह कैसे

आश्चर्य की बात है ! वास्तव में एक निष्पाप हृदय में कितनी ज़बर्दस्त ग्रहण-शक्ति है, यह इस बात का एक ज्वलन्त दृष्टान्त है।"

बीच-बीच में मेरे मन में यह लहर उठती थी कि मैं स्वयम् लीज़ा के पास चला जाऊँ, और उससे प्रार्थना करूँ कि वह मेरे यहाँ न आये, और ख़ुमारी की हालत में जो लम्बी-चौड़ी बातें मैंने उससे कही थीं उन्हें महत्त्वहीन समझ कर भूल जाय। पर तत्काल मेरे मन में एक ऐसे भयंकर क्रोध की उत्तेजना जागरित हो उठती कि यदि उस समय लीज़ा कहीं मेरे पास आ खड़ी होती, तो मैं निश्चय ही उस पर बरस पड़ता; कटु शब्दों से उसका अपमान करके उसके मुँह पर थूक देता, उसे दुतकार कर घर से बाहर निकाल देता, और यहाँ तक कि उसे पीट कर बुरी गत बना देता। भगवान को और भाग्य को धन्यवाद है कि उस समय लीज़ा मेरे सामने न आयी !

इसी तरह तीन दिन और बीत गये, पर लीज़ा न आयी। इससे मेरे हृदय को कुछ तसल्ली हुई। उसके प्रति क्रोध का जो भाव इतने दिनों से मुझे प्रतिपल उत्तेजित करता आया था, वह बहुत कुछ शान्त हो गया। यहाँ तक कि उसके प्रति एक प्रकार की ममता का-सा भाव मेरे मन में अंकुरित होने लगा। संध्या को जब मैं बाहर टहलने जाता, तो मैं लीज़ा के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें सोचता रहता। मन-ही-मन कहता—"मैं निश्चय ही लीज़ा को उसके वर्तमान जीवन की दुर्गति से बचाऊँगा। वह मेरे पास आयेगी, मैं उसके पास जाऊँगा। इसमें हर्ज़ ही क्या है ! मैं उसके मन को विकास की ओर

उन्मुख करके उसे उन्नति के पथ पर ले जाऊँगा। मैं जानता हूँ कि वह मुझे चाहने लगी है। वह हृदय से, सम्पूर्ण आत्मा से मुझे चाहती है। पर मैं यह भाव दिखाऊँगा कि मैं उसके प्रेम से अपरिचित हूँ। इसके बाद एक दिन वह अपनी विह्वलता को अधिक न दबा सकने के कारण मेरे गले से लिपट जायगी। उस समय उसकी आँखों में करुणा की बूँदें छलकती हुई दिखाई देंगी, और वह अपने सारे शरीर में सिहरन का अनुभव करेगी। वह रुँधे हुए गले से गद्गद स्वर में मुझसे कहेगी—'तुम मेरे मुक्तिदाता हो, सारे संसार से कोई सम्बन्ध अब मेरा नहीं रहा; अब एकमात्र तुम मेरे प्राणों के आधार हो!' इस पर मैं आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए कहूँगा—'लीज़ा, क्या तुम यह समझती हो कि मैं इतने दिनों तक तुम्हारे प्रेम से अपरिचित था? तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मेरे मन की जानकारी में यह बात बहुत पहले आ चुकी थी। पर यह जानते हुए भी इतने दिनों तक मैंने तुम्हारे प्रति उदासीनता का भाव क्यों दिखाया? इसका कारण यह है कि यदि मैं तुम्हारे प्रति प्रेम का भाव दर्शाता तो तुम मेरे आगे पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण करने को तत्पर हो जातीं—अपना कर्तव्य समझ कर। पर मैं तुम पर इस तरह का दबाव नहीं डालना चाहता था; क्योंकि दबाव डालने से प्रेम की सब सुकुमारताएँ नष्ट हो जाती हैं। पर अब चूँकि तुमने स्वेच्छा से आत्म-समर्पण किया है, इसलिए अब तुम पूर्ण रूप से मेरी हो। अब तुम एक साधारण नहीं, बल्कि मेरी कवि-कल्पना की मूर्तिमती सृष्टि हो, और मेरे हृदय-राज्य की अधिष्ठात्री देवी। इसलिए—

मेरे मन के इस प्रांगण में अभय पगों से आओ;
    रानी, अपना शासन-चक्र चलाओ !'

इसके बाद हम दोनों का जीवन-चक्र एक साथ चलेगा, और दोनों एक-साथ विश्व-भ्रमण के लिए निकल पड़ेंगे।" आदि-आदि-आदि।

पर इस प्रकार की कल्पना में निमग्न रहने के बाद मैं स्वयम् अपनी छायावादी भावुकता के कारण लज्जित हो उठता और अपनी मूर्खता पर स्वयम् छींटे कसने लगता।

कभी-कभी मैं सोचता—"शायद चकले की मालकिन उसे घर से बाहर जाने की आज्ञा नहीं देगी। मुझे विश्वास है कि इस तरह की लड़कियाँ हर समय क़ैदी की दशा में रहती हैं, उन पर कड़ी निगरानी रखी जाती है, और बाहर निकलने की सख्त मनाही रहती है। पर लीज़ा ने कहा था कि अभी तक वह दासत्व के बन्धन में पूरी तरह से नहीं जकड़ी गयी है। इस बात का क्या अर्थ हो सकता है ? कुछ भी हो, वह एक दिन निश्चय ही आवेगी, निश्चय !"

मैंने इस प्रकार की कल्पनाओं में अपने को पूर्णतया खो दिया होता, पर मेरे अशिष्ट नौकर एपोलन ने इस बीच बात-बात में मुझे इस क़दर तंग करना आरम्भ कर दिया था कि लीज़ा के सम्बन्ध में चिन्ता करने का बहुत कम समय मुझे मिलता था। वह एक ऐसे भयंकर रोग की तरह प्रतिपल, प्रतिक्षण मेरे मेरे पीछे पड़ा रहता था जो किसी भी उपाय से दूर नहीं किया

जा सकता था। बरसों से वह मेरे साथ था, और प्रारम्भ से ही हम दिन-रात एक दूसरे से जूझते चले आते थे। न जाने किस मूर्खता अथवा दुर्बलता के फेर में पड़कर मैं न उसे विदा कर पाता था, न समझौता ही कर सकता था। जैसी असह्य घृणा उसके प्रति मेरे मन में उत्पन्न हो गयी थी, वह अवर्णनीय है। वह अधेड़ था और गम्भीर प्रकृति का दुष्टात्मा था। वह केवल मेरी ही नौकरी नहीं करता था, बल्कि काम से छुट्टी पाने पर दर्ज़ी का काम भी बीच-बीच में कर लेता था। मुझसे उसे क्या गिला था, उसकी तेवरियाँ हर समय क्यों चढ़ी रहती थीं, मैं कह नहीं सकता। यह बात मुझसे छिपी नहीं थी कि वह भी मुझे भयंकर घृणा की दृष्टि से देखता है। वह ऐसा भाव दिखाता था कि वह बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँचा हुआ है, जहाँ से मेरे समान क्षुद्र जीव बहुत ही छोटे दिखाई देते हैं। उसके जीवन की प्रत्येक गतिविधि घड़ी के काँटों के समान नियमित रूप से चलती थी। इसके अतिरिक्त वह बहुत ही घमंडी था, और अपने को सिकन्दर से कुछ कम नहीं समझता था। अपने कोट के प्रत्येक बटन और अपनी उँगलियों के प्रत्येक नाख़ून के प्रति उसके मन में एक ऐसे ममत्व का भाव वर्तमान था कि देख कर आश्चर्य होता था। मुझसे वह अधिक बातें नहीं करता था, शायद मुझे वह अधिक बातों के योग्य नहीं समझता था। अत्यन्त आवश्यक होने पर जब कुछ बोलता भी, तो बुज़ुर्गाना रौब से। बीच-बीच में अत्यन्त गम्भीर शब्दों में मुझे डाँट-डपट देता था। वास्तव में वह मुझे एक निपट मूर्ख और घृणित जीव समझता था।

मेरा जो कुछ काम वह करता था वह इतना कम था कि उसके लिए सात रूबल मासिक बहुत अधिक था। पर वह यह भाव दिखाता था कि वह मुफ़्त में सात रूबल प्रतिमास मुझसे लेकर मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा कर रहा है। हम दोनों की पारस्परिक घृणा इस हद तक पहुँची हुई थी कि बाहर के कमरे में उसके पाँवों की आहट सुनते ही मेरे सिर से लेकर पाँव तक आग लग जाती। पर सबसे अधिक मैं उसके बोलने के ढंग से जलता था। वह बोलते हुए सीटी बजाने की सी आवाज़ मुँह से निकलता, जो मुझे असह्य मालूम होती थी।

यह सब होते हुए भी मैं उसे बरखास्त करने में असमर्थ था। इसका कारण यह था कि वह मेरे जीवन के साथ इस प्रकार अविच्छेद्य रूप से घुलमिल गया था जैसे कुछ विशेष-विशेष प्रकार के रासायनिक पदार्थ एक-दूसरे से मिलकर एक अखंड सम्मिश्रण के रूप में परिणत हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिस अन्धकारमय एकान्त पिंजर में मैं समस्त मानवता से विच्छिन्न होकर एकाकी जीवन बिता रहा था उसे छोड़ कर कहीं दूसरे स्थान में जाने की न तो मैं इच्छा ही रखता था न उसके लिए समर्थ ही था। और उस अन्धगुहा में निवास करने पर आयोजन का साथ छोड़ना मेरे लिए असम्भव था, क्योंकि वह उस अन्धगुहा के जीवन से घनिष्ठ रूप से जड़ित था।

निश्चित दिन को उसका वेतन न मिलने पर वह जो रुख अख्तियार करता था, वह अद्भुत था। उसका वह रुख देख कर मेरे लिए यह असम्भव हो जाता था कि दो-एक दिन के लिए मैं उसका वेतन रोके रहूँ। जब-जब मैंने इस प्रकार की चेष्टा की थी

तब-तब वह अत्यन्त गम्भीर मुखाकृति बनाकर, मेरे प्रति घृणा और तिरस्कार का भाव प्रदर्शित कर मुझे ऐसा बेचैन बना देता था कि मुझे किसी-न-किसी उपाय से रुपयों का प्रबन्ध करके उसका वेतन चुकाने को बाध्य होना पड़ता। पर इस बार समस्त संसार और समाज के प्रति मैं इस क़दर विद्रोही हो उठा था कि एपोलन को भी दंडित करने का निश्चय मैंने कर लिया था। मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि कम से कम दो सप्ताह तक के लिए उसका वेतन रोके रहूँगा। विगत दो वर्षों से मैं उसे इस रूप में दंडित करने का विचार कर रहा था, पर आज तक उस विचार को कार्यरूप में परिणत करने का साहस मुझे नहीं हुआ। किन्तु इस बार मैं अटल था। मैं इस बात के लिए ठहरा हुआ था कि वह अपने मुँह से वेतन के लिए कहे। वह दुष्ट कभी मुँह से इस बात के लिए नहीं कहता था, पर इंगितों द्वारा और परोक्ष रूप से अधीरता प्रकट करके मुझे इस हद तक अस्थिर कर डालता था कि उसके सिर पर सात रूबल फेंके बिना मुझे चैन नहीं मिलता था। इस बार मैंने यह सोच लिया था कि मैं उसके किसी भी संकेत और हाव-भाव से विचलित नहीं होऊँगा। जब वह तंग आकर अन्त में अपने मुँह से कहेगा कि 'मुझे वेतन दो!' तो मैं अपने बक्स से सात रूबल निकालकर उसे दिखाऊँगा, और कहूँगा कि यद्यपि मैंने उसके वेतन का रुपया अलग रखा है, पर मैं जानबूझ कर उसे अभी नहीं देना चाहता। मैं उसे दिखाना चाहता था कि मैं मालिक हूँ, और वह नौकर है; इसलिए सब काम मेरी इच्छा के अनुसार होंगे, उसकी

इच्छा के अनुसार नहीं। यदि वह नम्रतापूर्वक इस बात के लिए प्रार्थना करेगा कि उसे उसका वेतन मिल जाय, तो मैं उसे क्षमा कर दूँगा, और चुपचाप सात रूबल उसके हवाले कर दूँगा। पर यदि वह बुजुर्गाना रौब दिखाकर मुझसे रुपया ऐंठना चाहेगा, तो हर्गिज़ मैं नहीं दूँगा। और कुछ नहीं करूँगा, तो कम से कम एक मास के लिए उसका वेतन रोके रहूँगा।

पर केवल चार ही दिन बाद मेरा 'दृढ़ निश्चय' ढीला पड़ने लगा। कारण यह था कि उसने अपने चिर-पुरातन अस्त्रों का उपयोग करना आरम्भ कर दिया था। इस बार पहले से भी अधिक विकट रूप में। तीन वर्ष के अनुभव से यह बात मुझसे छिपी नहीं रह गयी थी कि वह किस प्रकार के उपायों को क्रमानुसार काम में लाता रहेगा। उसकी सब चालबाज़ियाँ मुझे एक-एक करके याद हो गयी थीं। मैं जानता था कि सबसे पहले वह अपनी कुटिल आँखों की तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से एकटक मेरी ओर देखता रहेगा, जैसे यह जताना चाहता हो कि वेतन शीघ्र न मिलने पर वह मुझे भस्म कर देगा। दो-एक दिन तक वह अपने इस पहले अस्त्र को अच्छी तरह मुझपर आज़मा चुकने के बाद जब यह देखता कि उसका कोई असर मुझ पर नहीं पड़ा तो वह मुझे तंग करने का कोई दूसरा उपाय काम में लाता। जब मैं किसी पुस्तक के पढ़ने में तन्मय रहता, या किसी चिन्ता में मग्न रहता, तो वह बिना बुलाये अकस्मात् मेरे कमरे में प्रवेश करता। दरवाज़े के चौखटे पर चुपचाप खड़ा हो जाता, और एक हाथ अपनी कमर के पीछे रखकर घोर घृणात्मक दृष्टि से

मेरी ओर एकटक देखता रहता। पर बोलता एक शब्द भी नहीं। जब मैं उससे प्रश्न करता कि वह क्या चाहता है, तो भी वह कुछ उत्तर न देकर मौन धारण किए रहता और उसी भयावह तथा घृणापूर्ण दृष्टि से मुझे घूरता रहता। कुछ देर तक उसी अवस्था में खड़े रहने के बाद फिर वह चुपचाप, धीरे—बहुत ही धीरे—अपने कमरे को वापिस चला जाता। दो घंटे बाद वह फिर सहसा आ उपस्थित होता। इस बार मैं उससे यह प्रश्न न करता कि उसे क्या चाहिए, बल्कि एक प्रबल झटके से क्रोध का भाव जता कर ढीठ दृष्टि से उसकी ओर आँखें गड़ाये रहता। इस प्रकार प्रायः तीन मिनट तक हम दोनों निःशब्द भाव से एक-दूसरे को घूरते रहते। इसके बाद वह बड़ी गम्भीरता के साथ धीरे-धीरे वहाँ से हट कर चला जाता, और फिर दो घंटे बाद आकर खड़ा हो जाता।

जब यह उपाय भी सफल न होता, और मैं अपने विद्रोह का भाव क़ायम रखता, तो वह दूसरा तरीक़ा अख़्तियार करता। वह मुझे घूरता हुआ लम्बी-लम्बी आहें भरता। उन आहों से वह स्पष्ट मुझे यह जता देना चाहता था कि मेरा पतन किस हद तक हो चुका है। यह कहने की आवश्यकता न होगी कि यह अन्तिम उपाय मेरे लिए प्रायः ब्रह्मास्त्र सिद्ध होता था। कोई व्यक्ति मेरे सम्बन्ध में अपनी यह धारणा व्यक्त करे कि मेरा अधःपतन हो चुका है, यह मुझे किसी भी प्रकार सह्य नहीं हो सकता। मैं उसकी आहों के कारण अत्यन्त उत्यक्त हो उठता, मुझे रात भर नींद न आती और

मैं बहुत परेशान रहता। फल यह होता कि मुझे वही करना पड़ता जो कि वह पापात्मा चाहता था।

पर अबकी मेरी मानसिक स्थिति कई कारणों से पहले से ही उत्तेजित हो उठी थी। कारणों से पाठक परिचित हैं। इसलिए ज्योंही उसने इस बार अपना पहला अस्त्र मुझ पर आज़माना चाहा त्योंही मैं उस पर बरस पड़ा। मैंने झल्ला कर कहा—"खबरदार! आगे मत बढ़ना! यदि तुम एक पग भी आगे बढ़े तो ख़ैर न होगी।"

मेरी बात सुन कर वह अधिक विचलित न हुआ। धीर और गम्भीर पगों से अपने दोनों हाथों को बुज़ुर्गाना ढंग से कमर के पीछे रखे हुए वह वापस जाने लगा। मैंने पूरी शक्ति से चिल्लाते हुए कहा—"लौटो! इसी दम लौटो!" निश्चय ही मेरे कंठ-स्वर ने उस समय भीषण रूप धारण कर लिया होगा, क्योंकि मुझे ऐसा जान पड़ा कि वह इस बार वास्तव में घबराया हुआ था। मेरे डाँटते ही वास्तव में लौटकर वह आ खड़ा हुआ और चकित तथा स्तब्ध दृष्टि से मेरी ओर देखने लगा। पर मुँह से एक शब्द भी उसने नहीं निकाला। इससे मेरा क्रोध और बढ़ गया।

मैंने गरजकर कहा—"मेरी आज्ञा के बिना तुम मेरे कमरे में कैसे घुस आये, मुझे इस बात का उत्तर दो। मुझे इस तरह घूरने का तुम्हें क्या अधिकार है? बोलो! मैं अभी इस बात का उत्तर चाहता हूँ, इसी दम!"

प्रायः आधे मिनट तक वह शान्त और निश्चल दृष्टि से मेरी ओर देखता रह गया। इसके बाद वह फिर वापिस जाने लगा।

"ठहरो!"—"मैंने चीखकर कहा और उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ते हुए बोला—"मैं तुम्हें एक इंच भी यहाँ से नहीं हटने दूँगा। जहाँ तुम हो वहीं खड़े रहो, और मेरे प्रश्नों का जवाब दो। तुम किस लिए यहाँ आये ?"

अन्त में उसकी ज़बान फूटी। उसने कहा—"मैं यह जानने के लिए आया था कि मेरे लिए कोई काम है या नहीं।" यह कहते हुए वह अपने ओठों को चबाने लगा और गर्दन को विचित्र ढंग से हिलाने लगा। उसकी प्रत्येक मुद्रा, प्रत्येक हाव-भाव मुझे एक ऐसी घृणित जड़ता से ओत-प्रोत दिखाई दिया जिसने मेरे क्रोध की आग को प्रचंड वेग से भड़का दिया। मैंने पागल की तरह उन्मत्त होकर कहा—"नीच! पाजी! मैं जानता हूँ कि तू किस उद्देश्य से यहाँ आया था। तू अपना वेतन माँगने के लिए आया था, पर अपनी मूर्खता और घमंड के कारण मुँह से स्पष्ट कहने का साहस तुझे नहीं होता। हाँ, मैं ठीक कहता हूँ, तू केवल मुझे तंग और परेशान करने के उद्देश्य से आया है। तू आदमी नहीं, हैवान है। तू जानकर भी नहीं जानना चाहता कि तेरा यह आचरण कितना घृणित है, कितना पतित, कितना सत्यानाशी है!"

वह फिर चुपचाप वापिस चले जाने को ही था कि मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। भयंकर रूप से चिल्लाते हुए मैंने कहा—"यह देख, ये हैं तेरे वेतन के रुपये! देखा! (यह कहते हुए मैंने दराज़ से सात

रूबल निकाले) इस दराज़ में ये सुरक्षित पड़े हुए हैं; पर जब तक तू अत्यन्त नम्रता और आदरपूर्वक क्षमा नहीं माँगता, तब तक मैं एक 'कापेक' (प्रायः एक पैसा) भी तुझे नहीं देने का, याद रखना !"

उसने प्रचंड आत्म-विश्वास के साथ दृढ़ शब्दों में कहा—"यह असम्भव है !"

"अच्छी बात है, तब मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि मुझे इस मास का वेतन हर्गिज़ नहीं मिलेगा !"

मेरी अन्तिम बात सुनी-अनसुनी करते हुए वह बोला—"मैंने कोई अपराध नहीं किया है, जिसके लिए मैं आपसे क्षमा माँगूँ। बल्कि उल्टे आपने मुझे 'दुष्ट और नीच' कह कर मेरा अपमान किया है। इसके लिए मैं सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास जाकर रिपोर्ट करूँगा।"

मैं अस्वाभाविक रूप से गरज कर बोला—"जा ! जा ! कमीने ! अभी जा ! बदमाश, पाजी, नमकहराम, अभी जा ! जा ! जा !"

मेरी ओर न देखकर वह दरवाज़े की ओर मुड़ा और वहाँ से चुपचाप अपने कमरे में चला गया।

मेरा माथा भयंकर रूप से उत्तेजित हो उठा था। एपोलन के चले जाने पर मैंने मन-ही-मन कहा—"यह सब कांड केवल लीज़ा के कारण सम्भव हुआ है। हाँ केवल उसके कारण !" मेरा हृदय बड़े ज़ोरों से धड़क रहा था। अकस्मात् मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे हृदय अपने स्थान से हटकर नीचे गिर जायगा।

मैं स्थिर न रह सका। सीधे एपोलन के कमरे में गया, और बोला—"एपोलन ! अभी जाओ सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास।"

वह दुष्ट शान्त भाव से कपड़ा सीने के काम में जुट गया था। मेरी बात सुनकर वह विकट व्यंग के रूप में 'खिः खिः' करके हँस उठा। मैं उसके उस नीच हास्य की कुछ परवा न करके बोलता चला गया—"अभी जाओ ! नहीं तो, परिणाम क्या होगा, तुम कल्पना नहीं कर सकते !"

एपोलन ने कहा—"आपका दिमाग़ इस समय ठिकाने नहीं है। कुछ भी हो, मुझे किसी भी बात के लिए धमकी दिखाना वृथा है। मैं इस प्रकार भयभीत होने वाला आदमी नहीं हूँ।"

वास्तव में मेरा दिमाग़ ठिकाने पर नहीं था। उसकी बात से मैं और अधिक उन्मत्त हो उठा, और प्रायः एक पागल कुत्ते की तरह भूँकता हुआ बोला—"जाओ ! जाओ ! तुम इसी दम जाओ ! जाओ !" यह कहते हुए मैंने ज्योंही उसका गला धर दबाने के उद्देश्य से उसका कालर खींचा त्योंही एक नारी मूर्ति ने स्थिर शान्त पगों से भीतर प्रवेश किया। उसने जो दृश्य देखा उससे वह एकदम स्तम्भित और चकित रह गयी। मैं लज्जा से इस क़दर गड़ गया कि चारों ओर अन्धकार देखने लगा। उस कमरे से भाग कर मैं अपने कमरे में जा पहुँचा, और दोनों हाथों से अपने सिर के बाल पकड़ कर दीवार के सहारे विभ्रान्त अवस्था में खड़ा रहा।..

प्रायः दो मिनट बाद एपोलन के पाँवों की आहट मुझे सुनाई दी। उसने आकर अपनी स्वाभाविक गम्भीर मुद्रा से कहा—"कोई स्त्री आपसे मिलने आई है।" इतने में उसके पीछे से लीज़ा मेरे कमरे में आ पहुँची। एपोलन यह देखकर भी वहाँ से नहीं हटा, बल्कि घोर दुष्टतापूर्वक नीच व्यंग की मुसकान अपने घृणित मुख में झलकाते हुए वह वहीं पर खड़ा रहा। मैंने अधीर होकर वज्र स्वर में उसे आदेश देते हुए कहा—"जाओ !"

१०

इतने में मेरी पुरानी घड़ी ने पहले 'खररररं' की आवाज़ निकाली, और फिर इसके बाद सात का घंटा बजाया।

मैं वज्र-स्तम्भित सा अपने स्थान पर यथास्थित खड़ा रहा। मेरी लज्जा की सीमा नहीं थी। चेष्टा करते हुए किसी प्रकार मैंने अपने को सँभाला, और अपने स्थान-स्थान में फटे हुए ड्रेसिंग गाउन को इस तरह लपेट लिया जिससे उसके फटे हुए हिस्से न दिखाई पड़ें। लीज़ा भी अत्यन्त भ्रान्त भाव से मेरे सामने खड़ी थी। कुछ भी हो, मैंने अपनी लज्जा को उखाड़ फेंकने की चेष्टा करते हुए एक कुर्सी उसकी ओर बढ़ाई और कहा—"बैठ जाओ !" वह चुपचाप बैठ गयी और इस आशा में एकटक दृष्टि से मेरी ओर देखती रही कि मैं कुछ और कहूँगा। मुझे पूरा विश्वास था कि एपोलन के साथ मैं जिस तरह पेश आया था उससे वह मेरे जीवन के विकृत रूप से भली-भाँति परिचित हो गयी है। इसलिए उसका यह भाव दिखाना कि उसने न कुछ देखा, न कुछ सुना, मेरा क्रोध और अधिक भड़काने

में सहायता पहुँचा रहा था। मैंने मन-ही-मन शपथ खाते हुए प्रतिज्ञा की कि मैं उसके इस मनोभाव का बदला लूँगा।

मैंने कहा—"लीज़ा, तुम अकस्मात् ऐसे अवसर पर आ पहुँची हो, जब कि मैं कुछ विचित्र और अवांछनीय परिस्थितियों के चक्कर में पड़ा हुआ था।" (मन-ही-मन मैं समझ रहा था कि इस तरह की बात मुझे नहीं कहनी चाहिए थी।) उसका मुँह लज्जा से रंगने लगा था। मैं कहता चला गया—"तुम यह न समझना कि मैं अपनी दरिद्र दशा के कारण लज्जित हूँ। नहीं, मुझे इस बात का गर्व है कि घोर दरिद्रता में घिरे रहने पर भी मैं एक सुसंस्कृत व्यक्ति की तरह सचाई से जीवन बिता रहा हूँ। कुछ भी हो, क्या तुम चाय पियोगी ?"

"नहीं, धन्यवाद है, पर,—"

मैंने उसकी बात काटते हुए कहा—"जरा ठहरो !" इसके बाद मैं एपोलन के कमरे की ओर दौड़ा चला गया। मेरी मानसिक अवस्था कुछ विचित्र रूप से अस्थिर और अशान्त हो उठी थी। एपोलन की ओर सात रूबल फेंकते हुए मैंने घबराई हुई आवाज़ में हड़बड़ाते हुए कहा—"एपोलन, यह लो अपना वेतन, समझे ! पर इसके बदले में मैं तुमसे एक काम चाहता हूँ। जल्दी पास ही किसी दुकान में जाकर थोड़ी सी चाय और चीनी ले आओ। यदि तुम मेरा यह काम इसी क्षण न करोगे, तो मेरी सारी इज्जत मिट्टी में मिल जायगी। तुम नहीं जानते कि यह महिला कौन है। तुम्हारे मन में शायद यह सन्देह उत्पन्न हुआ है कि वह एक ऐसी-वैसी स्त्री है, पर यह तुम्हारी भूल है।"

एपोलन चश्मा पहन कर सीने के काम में फिर जुट गया था! उसने चश्मे के भीतर से एक बार केवल मेरे फेंके हुए रुपयों की ओर देखा, पर वह टस से मस न हुआ और सुई के भीतर तागा डालने लगा। पूरे तीन मिनट तक मैं हाथ बाँधे इस आशा में खड़ा रहा कि एपोलन चाय लाने के लिए उठेगा। मेरे मस्तिष्क में तरह-तरह की भावनाएँ उछल-कूद मचा रही थीं, और ख़ून का दबाव बढ़ता चला जाता था। मेरे चेहरे का रंग निश्चय ही उतर गया होगा, जिसे देखकर एपोलन को दया आई। सुई को अलग रखकर वह धीरे से उठा और, अत्यन्त शान्त भाव से कुर्सी को हटाते हुए उसने उसी धीरता और गम्भीरता से चश्मा उतारा। इसके बाद स्थिर, शान्त पगों से वह रुपयों की ओर बढ़ा और बड़े धैर्य के साथ उन्हें गिनने लगा। इसके बाद उसने मुझ से यह पूछने का कष्ट किया कि ठीक कितनी चाय और कितनी चीनी लानी होगी। इसके बाद वह चींटी की चाल से चला गया।

मैं वहीं खड़ा-खड़ा कुछ देर तक यह सोचता रहा कि लीज़ा के पास जाऊँ, या उसी दशा में—फटा हुआ ड्रेसिंग गाउन पहने—भाग कर कहीं चला जाऊँ। साथ ही मैं यह भी जानता था कि चाहे मैं कुछ भी क्यों न सोचूँ, लीज़ा के पास मैं अवश्य ही जाऊँगा। लीज़ा के पास पहुँच कर मैं मूर्खों की तरह एक टूटी हुई कुर्सी पर बैठ गया। बैठते ही मैं अकस्मात् चीख उठा—"मैं उसका ख़ून कर डालूँगा—हाँ, ख़ून!" यह कह कर मैंने मेज़ पर अपनी मुट्ठी से ऐसा आघात किया कि दावात से स्याही गिर गयी।

लीज़ा बेतरह घबरा उठी थी। उसने काँपते हुए स्वर में पूछा—"आपका आशय क्या है ?"

मैं उन्माद-ग्रस्त-सा हो कर पागल कुत्ते की तरह भूँकते हुए बोला —"मैं उसका ख़ून करूँगा।" और यह कहते हुए मेज़ पर आघात करता रहा। मैं कहता गया—"तुम नहीं जानतीं, लीज़ा, कि यह आदमी मुझे हर समय किस क़दर परेशान किए रहता है। तुम्हें जानना चाहिए कि वह एक नम्बर का गुंडा और बदमाश है। अभी वह चाय और चीनी लाने गया है। ओह, लीज़ा !"—यह कहते ही मैं रो दिया और मेरी आँखों से आँसू बह चले।

अपनी इस नीच दुर्बलता के कारण मेरी लज्जा और आत्म-ग्लानि की सीमा न रही। पर किसी प्रकार भी अपने को सँभालने की समर्थता मुझ में नहीं रह गयी थी। लीज़ा हक्की-बक्की रह गयी। घबराई हुई आवाज़ में उसने पूछा—"पर बात क्या है ?" और यह कह कर वह अपनी जगह से उठ कर मेरे पास चली आयी।

मैंने रुँधे हुए गले से हकलाते हुए कहा—"पानी ! मुझे थोड़ा-सा पानी लाकर दो !" पर वास्तव में उस समय मुझे पानी की तनिक भी आवश्यकता नहीं थी। यद्यपि कुटिल परिस्थितियों के दबाव के कारण मैं वास्तविक अर्थ में रो पड़ा था, तथापि अपनी झेंप मिटाने के लिए मैं नाटकीय स्वाँग रचने लगा था। पानी पास ही रखा था और लीज़ा ने एक एक गिलास में भर कर मुझे दिया। इतने में एपोलन चाय लेकर आ खड़ा हुआ ! मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि इस बीच जो कुछ घट चुका है, उसकी पूर्ति चाय

के समान एक अत्यन्त साधारण और अकाव्यात्मक चीज़ से किसी प्रकार भी नहीं हो सकती—बल्कि उससे स्थिति और भी अधिक दयनीय और साथ ही हास्यास्पद हो उठेगी।

लीज़ा ने व्याकुल और भीत दृष्टि से एपोलन की ओर देखा, पर वह किसी की ओर न देखकर चाय और चीनी रखकर चुपचाप चला गया। मैंने लीज़ा की ओर देखते हुए उसके मुख के भाव से यह जानने की चेष्टा की कि सब कुछ देखने और सुनने के बाद मेरे सम्बन्ध में किस प्रकार की धारणा उसके मन में उत्पन्न हुई है। कुछ समय बाद मैंने कहा—"निश्चय ही मेरे प्रति तुम्हारे मन में घोर घृणा उत्पन्न हो गई होगी।" पर वह इस क़दर घबराई हुई थी कि उत्तर के रूप में एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं निकला। मुझे स्वयम् अपने ऊपर क्रोध आ रहा था, इसमें सन्देह नहीं; पर फिर भी मैं मन-ही-मन सारा दोष उसी के सिर पर मढ़ रहा था। उसके प्रति एक भयंकर क्रोध और घृणा का भाव मेरे मन में जागरित होने लगा था। यहाँ तक कि बीच-बीच में उसकी हत्या कर डालने की उन्मत्त भावना मेरे भीतर भड़क उठती थी। उससे बदला लेने के उद्देश्य से मैंने मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा कि अब से किसी भी विषय में एक शब्द भी उससे नहीं बोलूँगा। "मेरी मानसिक उत्तेजना का मूल लीज़ा है!" यह सोचते हुए मैं चुप बैठा रहा। मेज़ पर चाय रखी पड़ी थी, पर हम दोनों निःशब्द भाव से स्थिर बैठे हुए थे, न हम दोनों में से कोई कुछ बोलता था, न चाय ही पीता था। मैं जान बूझ कर चाय नहीं पी रहा था, ताकि लीज़ा को भी उसे पीने की हिम्मत

न पड़े—मेरी खोपड़ी की विकृति इस दशा को पहुँच गयी थी। पर बीच-बीच में वह कनखियों से मेरी ओर देख रही थी। उसकी दृष्टि में आश्चर्य और पीड़न के भाव एक साथ वर्तमान थे। मैं हठपूर्वक चुप बैठा रहा। मैं जानता था कि पहली बार आए हुए किसी भी अतिथि के आगे इस प्रकार का मौन आचरण किसी प्रकार भी उचित, शिष्टता-पूर्ण और वांछनीय नहीं है, बल्कि परम नीचता का परिचायक है; पर अपने मन की विकृति के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता था।

अकस्मात् लीजा ने कहा—"मैं—मैंने उस स्थान को सदा के लिए छोड़ देने का विचार कर लिया है।" वह किसी तरह उस असह्य निस्तब्धता को भंग करना चाहती थी, इसलिए हड़बड़ी में उसने ऐसी बात सबसे पहले कह डाली जिसे उसे सब से बाद में कहना चाहिए था। मैं समझ गया कि उसकी भी मानसिक दशा उस समय बहुत कुछ मेरी ही तरह हो गयी थी। नहीं तो ऐसे अनुपयुक्त समय में जब कि वह मेरी मानसिक दुर्बलता और विकृति से भली भाँति परिचित हो गई थी, अपने जीवन के उस अत्यन्त महत्वपूर्ण निश्चय की सूचना मुझे कभी न देती। कुछ सेकेंडों तक मेरे हृदय में उसकी घबराहट और निश्छलता के कारण उसके प्रति एक निस्सीम करुणा का भाव जाग पड़ा। पर उस करुण भाव के साथ ही क्रोध की उत्तेजना भी बढ़ चली। मैंने अपने-आप से कहा—"भाड़ में जायँ मेरे हृदय के सब भावुकतापूर्ण काव्यात्मक भाव!"

इसके बाद प्रायः पाँच मिनट के लिए फिर कमरे में एकदम सन्नाटा छा गया। सहसा वह उठ खड़ी हुई, और अत्यन्त अस्पष्ट और

कम्पित स्वर में बोली—"क्या मेरी उपस्थिति से आपको किसी प्रकार की असुविधा हो रही है ?"

उसके कहने के ढंग से स्पष्ट पता चलता था कि मेरे मूर्खतापूर्ण मौन व्यवहार के कारण उसने अपने को अपमानित अनुभव किया है। इस बात से मेरा क्रोध दबा न रह सका, और भयंकर वेग से बाहर फट पड़ा। मैंने दहाड़ कर कहा—"तुम यहाँ क्यों आयीं ? मुझे ठीक-ठीक कारण तुम्हें बताना पड़ेगा।"

सिलसिलेवार बोलने की मानसिक स्थिति उस समय मेरी नहीं थी। मैं चाह रहा था कि मेरे मन में जो-कोई भी बात जगे उसे बिना किसी रोक-टोक के कह डालूँ। मैं कहता गया—"तुम्हारे यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी ? बोलो, मेरी इस बात का उत्तर दो ! अच्छी बात है, मैं तुम्हारी तरफ़ से इस बात का उत्तर देता हूँ। मैं जानता हूँ, तुम यहाँ क्यों आई हो। तुम इसलिए आई हो कि उस दिन रात के समय मैंने कुछ ऐसी बातें तुम्हें सुनाई थीं जिनका प्रभाव तुम्हारे भावुक हृदय पर बड़ा गहरा पड़ गया। पर तुम्हें मालूम होना चाहिए कि उस रोज़ मैंने जो कुछ भी कहा, केवल परिहास और व्यंग के तौर पर। मैं शराब पिए हुए था। संध्या को मेरे कुछ मित्रों ने मेरा अपमान किया था; उस वेदना को मैं किसी उपाय से भूलना और अपना जी बहलाना चाहता था। अपने उन साथियों में से एक विशेष व्यक्ति की खोज करता हुआ मैं तुम्हारे यहाँ पहुँचा था। वह एक अफ़सर था और मैं उससे द्वन्द्वयुद्ध करना चाहता था। जब वह नहीं मिला, और तुम और मैं अकेले रह गये, तो मैंने अपने क्रोध को तुम्हारे ही

ऊपर उतारने का निश्चय कर लिया। यही कारण था कि अपने हृदय में संचित समस्त विष मैंने तुम्हारे ऊपर उँड़ेल कर तुम्हारे जीवन के सम्बन्ध में जली-कटी बातें तुम्हें सुनायीं। मैं दूसरों के द्वारा अपमानित हुआ था, इसलिए मैंने बदले में तुम्हारा अपमान किया। पर तुम्हारा सरल हृदय ऐसे अज्ञानान्धकार से ढका हुआ है कि तुमने मेरी प्रत्येक बात को वास्तविक अर्थ में ग्रहण किया, और यह सोच लिया कि मैं तुम्हारा उद्धार करने के उद्देश्य से तुम्हारे पास आया। क्यों, मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं ?"

लीज़ा ने मेरी ऊटपटांग बातों का पूरा तात्पर्य भले ही न समझा हो, पर मूल बात का आशय वह समझ गयी थी, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी बातें सुन कर उसके मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगी थीं और चेहरे का रंग एक दम उड़ गया था। स्पष्ट ही उसे चक्कर आने लगा था और वह कुर्सी पर इस तरह गिर पड़ी जैसे एक कुल्हाड़े की चोट खा कर कोई पेड़ तड़ाक से टूट कर नीचे गिर पड़ा हो। वह आँखें फाड़-फाड़ कर मेरी ओर देख रही थी और एक अज्ञात आतंक की भावना से उसका सारा शरीर सिहर उठा था। मेरे कथन में जो व्यंग और विद्वेष का विष भरा हुआ था उसके प्रभाव से उसके हृदय में एक नशे की सी जड़ता छाने लगी थी, और वह भ्रान्त भाव से स्तब्ध बैठी हुई थी।

मैं अपनी कुर्सी पर से उठ कर कमरे में अशान्त पगों से टहलते हुए बोला—"तुम्हारा उद्धार! ठीक है! पर तुम में इतनी बुद्धि होनी चाहिए थी कि जब मैं तुमसे भी अधिक पतित हूँ, तो तुम्हारा

उद्धार कैसे कर सकता हूँ ! यदि तुम में कुछ भी अक्ल होती, तो जब मैं तुम्हें नैतिक शिक्षा देने का दुस्साहस कर रहा था उस समय तुमको चाहिए था कि मेरे गाल पर एक थप्पड़ जमाते हुए कहतीं—'मुझे शिक्षा देने का तुम्हें क्या अधिकार है ?' तुम्हें खबर नहीं कि मैं कितना बड़ा नीच और कायर हूँ। किसी भी दुर्बल प्राणी पर रौब गाँठने में मुझे विकृत आनन्द मिलता है। मैं चाहता था कि किसी भी उपाय से तुम्हारी आँखों से आँसू निकालने में सफलता प्राप्त करूँ, तुम्हारे मन में आत्मग्लानि का भाव और बेचैनी उत्पन्न करके तमाशा देखूँ। केवल इतना ही मेरा उद्देश्य था। पर साथ ही उस समय मेरे मन में स्वयम् अपने प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो रहा था, क्योंकि मैं जानता था कि मैं घोर पापी और कमीना हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हें अपना पता देने की मूर्खता मैंने क्यों की ! ज्योंही मैं घर पहुँचा त्योंही मैं अपने इस कृत्य के लिए पछताने लगा और मन-ही-मन तुम्हें शाप देने लगा। चूंकि तुमसे मैंने झूठी बातें कही थीं. इसलिए तुम्हारे प्रति मेरे मन में प्रचंड घृणा का भाव उत्पन्न हो गया। बाहर से मैं तुम्हारे भीतर विशुद्ध काव्यात्मक भाव जगाने की चेष्टा कर रहा था, पर भीतर-ही-भीतर यह कामना कर रहा था कि तुम जहन्नुम में चली जाओ—इस कारण भी मैं बाद में तुमसे घृणा करने लगा था।

"वास्तव में मैं जो कुछ चाहता हूँ वह है अपनी व्यक्तिगत शान्ति। यदि मैं आराम से रह पाऊँ तो सारा संसार लुट जाय, मिट जाय, तहस-नहस हो जाय—इस बात की तनिक भी परवा मुझे नहीं रहती।

अपने एक साधारण से सुख के लिए मैं सारे संसार को बेच सकता हूँ। यदि मुझसे यह कहा जाय कि 'तुम्हें एक गिलास चाय पीने की स्वतन्त्रता मिलने से सारा जगत विनाश को प्राप्त हो जायगा, अब बताओ इन दो में से तुम्हें कौन बात अधिक पसन्द है?' तो मैं तत्काल उत्तर दूँगा—'मैं चाय पीने की स्वतन्त्रता चाहता हूँ; सारा जगत नष्ट हो चाहे रहे, इससे मेरा कुछ बनता बिगड़ता नहीं।' क्या मेरे स्वभाव की इस विशेषता के प्रति उस रात तुम्हारा ध्यान नहीं गया? मैं जानता हूँ कि मैं एक नम्बर का अहंवादी हूँ, और पशु से भी अधिक पतित हूँ। तीन दिन तक लगातार मैं इस आशंका से अस्थिर रहा कि तुम न जाने किस समय मेरे यहाँ आ धमको। और तुम जानती हो, इन दिनों जिस बात ने मुझे सबसे अधिक पीड़ित कर रखा था वह क्या थी? वह थी यह चिन्ता कि उस रात तुम्हारी दृष्टि में मैं एक नायक के रूप में प्रकट हुआ था, और जब तुम मेरे घर आकर मेरी निर्धनता और दीन दशा देखोगी, तो तुम्हारी आँखों से मैं गिर जाऊँगा। अभी कुछ ही समय पहले मैंने तुमसे कहा था कि मैं अपनी दरिद्रता के कारण लज्जित नहीं हूँ। पर सच बात यह है कि मैं इस सम्बन्ध में अत्यन्त भावुक हूँ, और मेरी दीन-हीन परिस्थिति ने मुझे जितना अधिक लज्जित कर रखा है उतना संसार की और किसी भी दूसरी बात ने नहीं। मुझे यदि लोग चोर समझें, तो मुझे उतनी लज्जा नहीं होगी, जितनी मैं अपनी दरिद्रता के कारण अनुभव करता रहता हूँ। मैं इतना अधिक अहंकारी हूँ कि मुझे प्रतिपल अपनी दरिद्रता की पोल खुल जाने का आतंक बना रहता है। इसलिए तुम्हें जान

लेना चाहिए कि जब मैं अपने इस फटे-पुराने ड्रेसिंग गाउन से अपना शरीर ढक कर अपने नौकर एपोलन पर एक जंगली कुत्ते की तरह भूँक रहा था, तो ठीक उस समय तुमने अकस्मात् भीतर प्रवेश करके मेरे मन में असह्य आत्मग्लानि का भाव जगा दिया। तुम्हारे इस अपराध—हाँ अपराध—के लिए मैं जीवन-भर तुम्हें क्षमा नहीं करूँगा। कहाँ तो उस रात मैं तुम्हारे लिए एक काव्य का नायक बना हुआ था, और कहाँ आज मैं तुम्हारे सामने एक गुंडे के रूप में प्रकट हुआ हूँ! तुम्हारे सामने मेरी यह दुर्गति हुई है कि मैं प्रबल चेष्टा करने पर भी अपने आँसुओं को रोक नहीं पाया—अपनी इस दीन दशा के लिए भी तुम्ही दोषी हो और मैं इसके लिए भी तुम्हें कभी क्षमा नहीं करूँगा! और-और इस समय तुम्हारे सामने मैं अपनी दुर्बलताओं का यह जो कच्चा चिट्ठा सुना रहा हूँ, बाद में उसके कारण मेरे मन में निश्चय ही ग्लानि उत्पन्न होगी—इसके लिए भी तुम्हें मैं कभी क्षमा नहीं करूँगा। मेरी इन सब दुर्गतियों के लिए तुम्ही उत्तरदायी हो, क्योंकि तुम मेरे समान महानीच, घोर पापी, अत्यन्त घृणित और अतिशय तुच्छ कीट के जीवन-पथ में अकस्मात् आ धमकी हो। मैं जानता हूँ कि दूसरे कीट मुझसे अधिक उन्नत नहीं हैं, पर पता नहीं, किस कारण से वे अपनी मूर्खता मेरे समान व्यक्त नहीं करते। मैंने इतनी बातें तुमसे कही हैं। उन्हें ठीक तरह से समझने में तुम समर्थ हो या नहीं, इससे मुझे कोई वास्ता नहीं। तुम उस चकले में जीवन बिताने के कारण नष्ट हो जाओगी या नहीं, इस बात के लिए भी मैं तनिक चिन्तित नहीं हूँ। और क्या तुम यह नहीं

समझ पा रही हो कि मैं इस समय जो-कुछ कह रहा हूँ वह सब तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध सुन रही हो, इस कारण इस बात के लिए भी मैं तुम्हें कभी क्षमा नहीं करूँगा। अपने हृदय की जिस प्रकार की गुप्त बातों को मैं इस समय तुम्हारे आगे आवेश में आकर प्रकट कर रहा हूँ, मनुष्य अपने जीवन में केवल एक बार उस तरह की बातों को स्वीकृत करता है। और तुम मेरी सब बातें सुन चुकने पर भी अभी तक क्यों मेरे सामने बैठी हो, यह मैं समझ नहीं पाता। तुम यहाँ से चली क्यों नहीं जातीं ?"

सहसा लीज़ा के मुख के भाव में एक अत्यन्त आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखायी दिया। अभी तक मैं अपनी किताबी बातों के बहाव में स्वयम् ऐसा बहा जा रहा था कि उनका क्या प्रभाव सुनने वाले पर पड़ सकता है, इस बात की ओर मेरा ध्यान ही नहीं गया था। पर अपनी बातों से सामने बैठी हुई जिस दलिता नारी का अपमान मैं अत्यन्त निष्ठुरता के साथ कर रहा था, उसे मेरे मन की वास्तविक स्थिति को समझने में अधिक देर न लगी। उसके हृदय में निहित प्रेम ने उसे एक ऐसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्रदान कर दी थी जिसकी कल्पना भी पहले मैंने नहीं की थी। वह यह बात ताड़ गयी थी कि जिस व्यक्ति ने उसे भयंकर रूप से जली-कटी बातें सुनाई हैं वह उसकी अपेक्षा भी अधिक पीड़ित और दया का पात्र है।

इस समय तक लीज़ा की दृष्टि में जो भय और ग्लानि का भाव वर्तमान था वह अकस्मात् लुप्त हो गया और एक अत्यन्त सकरुण समवेदना का भाव उसकी आँखों में झलक उठा। मैं जब बोल रहा था

और अपने को अधम, पतित और नीच बताते हुए अपनी आँखों को आँसुओं से भिगोता जाता था, तो मैं इस बात पर ग़ौर कर रहा था कि लीज़ा के होंठ सान्त्वना देने के लिए व्यग्र हो उठते थे। मैं उसके लिए जिन घोर हिंसात्मक और विद्वेषपूर्ण कटु शब्दों का व्यवहार कर रहा था उससे वह तनिक भी विचलित नहीं हुई। क्योंकि वह निश्चय ही यह समझ गयी थी कि इस तरह की बातें तभी मुँह से निकलती हैं जब व्यक्ति किसी कारण से अत्यन्त दुःखी होता है। वह धीरे से उठी और एक सलज्ज, सकरुण और स्नेहपूर्ण मुसकान मुँह में झलकाती हुई मेरी ओर बढ़ी। इससे उसने मेरी ओर अपना हाथ बढ़ा दिया। क्षण भर के लिए मेरा हृदय तिलमिला उठा, और मैं अनिश्चित अवस्था में खड़ा रहा। लीज़ा ने ज्योंही मेरे मुख में एक विह्वल, व्याकुल भाव देखा त्योंही उसने अपनी दोनों बाँहों से मेरा गला जकड़ लिया और टपाटप आँसू गिराने लगी। मैं अपने को अधिक न सँभाल सका और सिसक-सिसक कर बेबस रोने लगा। ऐसा रोया जैसा जीवन में पहले कभी नहीं रोया था। मैं खड़ा न रह सका और नीचे सोफ़ा में लेट गया। इसके बाद हिचकियाँ भरते हुए मैंने कहा—"असम्भव है—मुझे अब जीवन में एक भला आदमी बनने का अवसर कभी नहीं मिल सकता।" प्रायः पन्द्रह मिनट तक मैं एक हिस्टीरिया के-से आवेश में रोता रहा। लीज़ा अपनी कोमल क्लान्त बाँहों से मुझे अपने गले से लगाये रही। मेरे अस्तित्व के आगे सारा संसार उसके लिए तुच्छ हो गया था।

पर सबसे अधिक विडम्बना की बात यह हुई (जैसा कि मैं पहले से ही जानता था) कि मेरा हिस्टीरिया का दौरा कुछ ही समय बाद समाप्त हो गया, और मैं सोफ़ा में अपना मुँह छिपाए हुए लीज़ा के आलिंगन-पाश में बद्ध होकर ग्लानि संकोच और लज्जा के कारण गड़ा जाता था। मैं लज्जित किस बात के लिए हो रहा था ? मैं स्वयम् नहीं जानता था। पर यह अस्पष्ट अनुभूति मेरे भीतर आलोड़ित हो रही थी कि जिस प्रकार चार दिन पहले मैं एक विजयी महापुरुष बना हुआ था और लीज़ा एक अत्यन्त दीना और पतिता नारी के रूप में मेरे आगे असहाय अवस्था में लोट रही थी, ठीक उसी प्रकार आज लीज़ा विजयिनी वीरांगना बन गयी है, और मैं अत्यन्त दयनीय और अपमानित अवस्था में चोरों के समान सोफ़ा में मुँह छिपाए बैठा हूँ।

अन्त में बड़ी चेष्टा के बाद मैं अपना मुँह ऊपर उठाने में समर्थ हुआ। मैंने साहस करके लीज़ा की ओर देखा। उसकी ओर देखते ही मेरे मन में प्रेम और घृणा के भाव एक साथ जाग पड़े और एक दूसरे के साथ जूझने लगे। उन दोनों भावनाओं के संघर्ष से मेरा हृदय बहुत बेचैन हो उठा, जिसके फलस्वरूप एक प्रतिहिंसा की-सी भावना मेरे भीतर जागरित हो उठी। उसी प्रतिहिंसा की मनोवृत्ति से प्रेरित होकर मैंने उसके कन्धे पर हाथ रखा। क्षणभर के लिए लीज़ा के मुख में आश्चर्य और भय के चिह्न एक साथ प्रकट हुए। इसके बाद उसने मुझे प्रगाढ़ आलिंगन-पाश में बाँध लिया।

११

इस घटना के प्रायः पन्द्रह-बीस मिनट बाद मैं ज्वर-जर्जरित-सा होकर अशान्त पगों से अपने कमरे में टहलने लगा। बीच-बीच में 'स्क्रीन' की दरार से होकर मैं झाँक रहा था। वहाँ से लीज़ा पलंग पर लेटी हुई दिखाई देती थी। वह तकिये में अपना मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर रो रही थी। मैं मन-ही-मन इस बात से कुढ़ रहा था कि सब-कुछ समाप्त हो जाने के बाद भी वह अभी तक नहीं गयी। मैं उसके प्रति अपनी प्रतिहिंसा की भावना को सन्तुष्ट कर चुका, और इसके बाद मैं एक क्षण के लिए भी उसे अपने पास नहीं देखना चाहता था। लीज़ा भी निश्चय ही समझ गयी थी कि मेरे मन के भीतर किस प्रकार का विषकीट घातक षड्यन्त्र रचे हुए था। वह समझ गयी थी कि मैंने प्रेम की अनुभूति से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि उसे और अधिक अपमानित और लांछित करने के उद्देश्य से उसके साथ कामाचार किया है। अभी तक वह मुझे दयनीय तथापि प्रेम के योग्य समझती थी, पर अब उसके मन में निश्चय ही यह दृढ़ विश्वास जम गया होगा कि मेरी नीचता की सीमा नहीं है और मैं न किसी व्यक्ति से प्रेम कर सकता, न किसी का प्रेम पाने की योग्यता रखता हूँ। केवल घृणा, विद्वेष तथा जघन्यता के मूल उपादानों से मेरे व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है।

कोई व्यक्ति मेरे समान घोर नीचता और निष्ठुरता का व्यवहार कर सकता है, यह बात निश्चय ही पाठकों की कल्पना के अतीत होगी। लीज़ा के समान नारी के आत्म-त्याग और विशुद्ध प्रेम को

मैंने केवल ठुकराया ही नहीं, बल्कि अपने जघन्य व्यवहार से ऐसा क्रूर षड्यन्त्र रचा जिससे वह स्वयम् अपनी आँखों में गिर जाय। पर इसमें मेरा क्या दोष है ? मेरे विकृत मस्तिष्क में प्रेम के सम्बन्ध में कुछ विचित्र कल्पना समाई हुई है। मेरे लिए प्रेम एक ऐसी चीज़ है जिसका आरम्भ घृणा से होता है और अन्त नैतिक पराधीनता में। मैं केवल इसी उद्देश्य से प्रेम कर सकता हूँ कि मेरी प्रेमिका पूर्णतः मेरी अधीनता स्वीकार कर ले। पर अधीनता स्वीकार कर लेने के बाद फिर उस नारी का कोई महत्व मेरे लिए नहीं रह सकता। अपने स्वभाव की इस घोर विकृति के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता।

लीज़ा का अस्तित्व मेरे लिए अधिकाधिक असहनीय होता जाता था, पर वह पलंग पर ऐसी घोर जड़ता की-सी अवस्था में पड़ी हुई थी कि टस से मस नहीं होती थी। अन्त में मेरी अधीरता ने अत्यन्त निष्ठुर रूप धारण किया और मैं 'स्क्रीन' पर अपनी उंगली से 'खट-खट' शब्द करने लगा। मेरा उद्देश्य लीज़ा को उस चरम जड़ता से जगाकर उसे जताने का था कि उसका मेरे यहाँ अब एक क्षण भी ठहरना मुझे स्वीकार्य नहीं है। मेरे खटखटाने के प्रायः दो मिनट बाद वह धीरे से 'स्क्रीन' की ओट से बाहर निकल आयी, और एक अत्यन्त म्लान दृष्टि से उसने मेरी ओर देखा। मैंने अपने मुख में एक कृत्रिम मुसकान की झलक लाने की चेष्टा की, और इसके बाद तत्काल आँखें फेर ली। उसकी ओर देखने का साहस मुझे नहीं होता था। वह धीरे से दरवाज़े की ओर मुड़ी और क्षीण स्वर में बोली—"अच्छा जाती हूँ !" यह कह कर वह जाने लगी ?

मैं हड़बड़ाता हुआ उसके पास गया, और उसका हाथ पकड़ कर उसके हाथ में मैंने कुछ रूबल दाब दिये और फिर एक कोने में जाकर खड़ा हो गया। मैं जानता हूँ कि सारी स्थिति को समझने के बाद भी मेरा इस प्रकार का व्यवहार नीचता की चरम सीमा को भी पार कर गया। मैं स्वयम् नहीं समझ पाता कि इतनी नीचता किसी विकृत से विकृत मनुष्य के भीतर भी कैसे सम्भव हो सकती है! इसमें सन्देह नहीं कि यह घृणित कांड कर चुकने के बाद मैं लज्जा और ग्लानि से गड़ गया; पर इससे क्या हुआ! मेरा नीचतापूर्ण उद्देश्य तो सिद्ध हो ही गया।

सहसा मैं होश में आया, और लीज़ा को पुकारने लगा। पर वह चली गयी थी। मैंने दरवाज़ा खोला और ज़ोर से पुकारने लगा "लीज़ा! लीज़ा!" पर लीज़ा का कहीं पता नहीं था। मैं भारग्रस्त हृदय लेकर भीतर गया। कुछ देर तक शून्य भाव से मैं उस मेज़ के पास खड़ा रहा जहाँ लीज़ा आकर बैठी थी। अचानक मैं चौंक पड़ा। लीज़ा के जाते समय पाँच रूबल का जो नोट मैंने लीज़ा के हाथ में थमा दिया था वह वहीं मेज़ पर पड़ा हुआ था। मुझे उस नोट को देखकर ऐसा जान पड़ा कि मेरी नीचतापूर्ण मनोवृत्ति साकार मेरे सामने पड़ी हुई है। वह दृश्य मुझे अत्यन्त असहनीय मालूम हुआ और मैं उस नोट को उठाकर कपड़े पहन कर बाहर की ओर दौड़ा चला गया। मैं लीज़ा को वह नोट वापस दे देना चाहता था।

बाहर बर्फ़ गिर रही थी, हवा का नाम नहीं था और सारा वातावरण शान्त मालूम होता था। न कहीं किसी प्रकार का शब्द

सुनाई देता था, न कोई व्यक्ति कहीं दिखाई देता था। मैं इधर-उधर लीज़ा की खोज में चक्कर लगाने लगा, पर कहीं उसका नामोनिशान तक नज़र नहीं आता था। वह कहाँ चली गयी ? और मैं क्यों उसकी खोज में परेशान होने लगा ?

ठीक है ! मैं इसलिए उसे खोज रहा था कि उसके चरणों पर लोट कर अपनी नीचता के लिए उससे क्षमा माँगू, और आँसुओं की झड़ी लगाकर पश्चात्ताप प्रकट करूँ। मैं वास्तव में इस बात के लिए अत्यन्त व्याकुल हो उठा था। साथ ही मैं सोचने लगा—"पर इस समय यदि मैं उसके आगे गिड़गिड़ाकर क्षमा माँग भी लूँ, तो उससे लाभ क्या होगा ? क्या कल मैं फिर उससे घृणा नहीं करने लगूँगा, और उस घृणा का सबसे बड़ा कारण क्या यह नहीं होगा कि आज मैंने उससे क्षमा माँगी ? और क्या मैं जीवन में कभी उसे प्रसन्न रख सकने में समर्थ हो सकूँगा ? क्या आज की रात मैंने यह बात अच्छी तरह प्रमाणित नहीं कर दी है कि मैं किस योग्य हूँ ? क्या मैं जीवन भर प्रतिपल उसको असहनीय कष्ट नहीं पहुँचाता रहूँगा ?"

बहुत देर तक इसी प्रकार की कल्पना में निमग्न रहकर मैं बर्फ़ के बीच अन्धकार में सड़क पर एकाकी खड़ा रहा। कुछ देर बाद मैं लौट कर अपने कमरे में पहुँचा। एक क्षण के लिए भी मुझे चैन नहीं मालूम होता था। मैं सोचने लगा—"जो हो चुका, उसके लिए पछताना अब वृथा है। अब मुझे यह सोचकर सन्तोष कर लेना चाहिए कि जो कुछ हुआ अच्छे के लिए ही हुआ। लीज़ा अपने जीवन के अन्त तक अपनी आज की तौहीनी को याद करती रहेगी

यह भी अच्छा ही है। इससे उसके भीतर दबी हुई मानवता पूर्ण रूप से जाग पड़ेगी, और आत्म-संभ्रम का भाव उभड़ेगा। यदि मैं इस समय उसे मना लेता, तो कल उसकी मनोपीड़ा बहुत-कुछ ठंढी पड़ जाती। पर उससे क्या लाभ होता ? मेरा प्रेम तो वह पाती नहीं, और साथ ही अपमान की तीव्र वेदना की ज्वाला का जो-एक विशेष सुख है उससे भी वंचित रह जाती। वह ज्वाला उसके रात-दिन के पतित और गलित जीवन को सब समय पवित्र बनाए रहेगी। मेरे नीचता-पूर्ण व्यवहार के कारण मेरे प्रति घृणा का जो भाव सब समय उसके मन में उमड़ता रहेगा वह उसके भीतर की मानवता की पुण्य ज्योति को कभी बुझने नहीं देगी। और सम्भवतः मुझ जैसे अधम को बाद में वह पूर्णतया क्षमा करने में भी समर्थ हो जायगी, जिससे उसका देवत्व भी विकसित हो उठेगा। दोनों में से कौन अच्छा है—मेरे साथ प्रेम और सम्मान के ढोंग के बीच में रहने का अत्यन्त साधारण 'सुख' या एक महान वेदना की जीवनव्यापी तपन ?"

रात-भर इसी प्रकार के विचारों की उलझन में मुझे नींद न आयी, और मैं परकटे पंछी के समान तड़पता रहा।

आज इस घटना को बीते कई वर्ष हो गये, पर उसकी कटुस्मृति अभी तक मुझे अत्यन्त तीक्ष्णता के साथ समय-समय पर विकल करती रहती है।

———

सूदखोर की पत्नी

१

वह यहाँ पर पड़ी हुई है—वैसी ही सुन्दर जैसी सब दिन थी। समय-समय पर मैं उसके निकट जाता हूँ और बड़े ग़ौर से उसके मुख की ओर देखता रहता हूँ। कल उसकी लाश उठा ली जायगी और मैं अकेला रह जाऊँगा। आज वह कमरे में उसी तरह लेटी हुई है जैसी सब दिन लेटी रहती थी, पर कल क़ब्र के भीतर का अनन्त अन्धकार उसे मानव-समाज के बीच से सदा के लिए लुप्त कर देगा। कैसे वह इस दशा को पहुँची, मैं कह नहीं सकता। मैं बार-बार अपने-आप से यह प्रश्न करता हूँ और अपने भीतर से ही उसका ठीक-ठीक उत्तर पाने की चेष्टा कर रहा हूँ। छः बजे उसकी मृत्यु हुई थी और तभी से मेरे मन में उक्त प्रश्न रह-रह कर उठ रहा है पर कोई भी उत्तर मेरे आगे स्पष्ट नहीं हो पाता। मैं बात को यथार्थ रूप में समझने का जितना ही अधिक प्रयत्न करता हूँ उतना ही अधिक उलझ जाता हूँ। शायद प्रत्येक घटना को सिलसिलेवार लिपिबद्ध करने की चेष्टा करने से मैं ठीक उत्तर पा जाऊँ।

प्रथम बार जब वह मेरे पास आयी थी, तब उसके आने पर मैंने कोई विशेष महत्त्व आरोपित नहीं किया था। वह मेरे पास

अपनी कुछ चीज़ें गिरो रखने के लिए आयी थी। गिरो रखने की आवश्यकता इसलिए पड़ी थी कि वह 'गोलास' नामक पत्र में अपने सम्बन्ध में एक इस आशय का विज्ञापन छपाना चाहती थी कि वह किसी सम्भ्रान्त परिवार में गवर्नेस के रूप में नियुक्त होने की इच्छा रखती है। उसके पास विज्ञापन छपाने के लिए पैसे नहीं थे, इसलिए उसे मेरे पास आना पड़ा। वह जानती थी कि मैं चीज़ों को बन्धक के रूप में ग्रहण करके रुपये क़र्ज़ दिया करता हूँ।

पहले दिन मैंने उसमें तथा दूसरे क़र्ज़ लेने वालों में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया। तब मेरा ध्यान उसकी किसी भी विशेषता की ओर नहीं गया। पर जब वह फिर दो-एक बार क़र्ज़ लेने के लिए मेरे पास आयी, तो मैं उसके प्रति विशेष ध्यान देने लगा। उन दिनों वह क़द में लम्बी दिखाई देती थी, बाल उसके कोमल और घुँघराले थे और वह दुबली-पतली और सुकुमार थी। मुझे देख कर वह बार-बार अपना मुँह लज्जा से फेर लेती थी। मुझे विश्वास है कि उसका यह संकोच-भाव उसके स्वभाव में निहित था और किसी भी अपरिचित व्यक्ति को देखकर वह लज्जा का अनुभव करने लगती थी। मैं उसकी चीज़ों की परख करके उसके मूल्य के अनुसार उसे रुपये देता, और वह रुपया पाते ही तत्काल चली जाती। कभी एक शब्द भी उसने मेरे सामने अपने मुँह से नहीं निकाला। मेरे पास जितने भी व्यक्ति बन्धक पर रुपया उधार ले जाने के लिए आते, वे सब मुझसे मोल-तोल और तर्क-वितर्क करते थे; पर वह इस सम्बन्ध में आश्चर्यजनक अपवाद थी। मैं उसकी चीज़ों का जितना

भी मूल्यांकन करता उस पर वह किसी भी रूप से कोई आपत्ति प्रकट नहीं करती थी।

वह जिस प्रकार की चीज़ें मेरे पास लाती थी उन्हें देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहता। एक बार वह गिलट के एयर-रिंग और एक निकल का तमगा गिरो रखने के लिए लाई। दोनों का मूल्य कुल मिला कर छः आने से अधिक न था। वह निश्चय ही यह जानती थी कि वे दोनों चीज़ें अत्यन्त साधारण मूल्य की हैं, पर उसके मुख के भाव से मुझे यह भाँपने में तनिक भी देर नहीं लगी कि वे चीज़ें तुच्छ होने पर भी किसी कारण से उनके प्रति उसके हृदय में बड़ी गहरी ममता है, और यदि वह परम संकट में पड़ने के कारण विवश न हुई होती, तो कभी उन्हें गिरो न रखती। बाद में मुझे मालूम हुआ कि उसके माँ-बाप मरने के बाद उसके लिए केवल वे ही दो चीज़ें सम्पत्ति के रूप में छोड़ गये हैं।

पाठकों को मालूम होना चाहिए कि मैं एक व्यवसायी हूँ, इसलिए ग्राहकों से अत्यन्त नम्रता तथा शिष्टता का व्यवहार रखना मैं बराबर अपना कर्तव्य समझता रहा हूँ। उस लड़की के साथ भी मैं बड़ी नम्रता से पेश आता था। पर एक बार—केवल एक बार मैंने उसके प्रति व्यंग किया। उस दिन वह एक बड़ी विचित्र चीज़ लाई थी। खरगोश के चमड़े का एक फटा-पुराना कम्बल वह मेरे पास गिरो रखने को लाई। उसे देखकर मैंने उसपर एक कटु आक्षेप किया। मेरे व्यंग से उसके मुख का भाव अत्यन्त उत्तेजित हो उठा। उसकी आँखें, जो बहुत सुन्दर, नीली और विचारपूर्ण थीं, उस समय जल

उठीं। पर मुँह से उसने एक शब्द भी नहीं निकाला, और अपना कम्बल लपेट कर उठा लिया और उसे वापस लेकर चुपचाप वहाँ से चल दी। उस दिन उसके मुख में जो अभिव्यक्ति झलक उठी थी उसे देखकर मेरे मन में प्रथम बार उसके प्रति विशेष रूप से ध्यान देने की भावना जागरित हुई। हाँ, अभी तक उसके मुख के उस समय के भाव की स्मृति मेरे मन में वैसी ही बनी हुई है। उस समय मेरे मन में यह धारणा भी उत्पन्न हुई कि वह अभी कमसिन है, और उसकी आयु चौदह वर्ष से अधिक नहीं है। पर वास्तव में तब उसकी आयु सोलह वर्ष की थी।

दूसरे दिन वह मेरे पास फिर आयी। बाद में मुझे मालूम हुआ कि वह अपना फटा-पुराना कम्बल दो और व्यक्तियों के पास ले गयी थी, पर चूँकि वे दोनों सर्राफ़ सोने और चाँदी का व्यवसाय करते थे, इसलिए उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। एक बार वह मेरे पास कंकर-पत्थर की तरह की चीज़ें लायी। मैंने उसे निराश न करने की दृष्टि से उन्हें स्वीकार कर लिया, और उनके बदले में उसे कुछ पैसे दे दिये। यह दूसरी बार उसके प्रति विशेष रूप से मेरा ध्यान गया।

तीसरी बार वह अम्बर का बना हुआ एक सिगरेट केस मेरे पास ले आयी। मैं मानता हूँ कि वह चीज़ खासी अच्छी थी, पर चूँकि मैं चाँदी और सोने का व्यवसायी हूँ इसलिए वह मेरे किसी काम की नहीं थी। फिर भी मैं ने उसे ग्रहण कर लिया और उसके हाथ में दो रूबल थमाते हुए बोला—"यह लो, मैं केवल तुम्हारी खातिर तुम्हें ये दो रूबल दे रहा हूँ, यह बात अच्छी तरह से समझ

लो। वर्ना तुम्हारी इस चीज़ का कोई मूल्य मेरे लिए नहीं है।" मेरी इस प्रकार की बात सुनते ही उसका मुख लज्जा और क्रोध से लाल हो आया। पर उसने इस प्रकार की बात सुनने पर भी मेरे रुपये फेर नहीं दिये। निर्धनता मनुष्य को इतना परवश बना देती है! मैं स्पष्ट देख रहा था कि मेरी बात से उसे गहरी चोट पहुँची है। जब वह चली गयी, तो मैं अपने मन में सोचने लगा—"उसकी विवशता से लाभ उठाकर मैंने उसे ज़लील करके उसपर जो विजय पायी है, उसका दो रूबल मूल्य क्या अधिक नहीं है?" मेरे मन ने उत्तर दिया—"नहीं, तनिक भी अधिक नहीं है! उसे अपमानित देखकर उसका स्वाभाविक गर्व खर्व होते देखकर मुझे जो प्रसन्नता हुई है, उसके आगे दो रूबल कुछ नहीं के बराबर हैं।" यह सोचते हुए मैं मन-ही-मन खूब हँसा। वास्तव में मैंने जान बूझकर उसके साथ वैसा व्यवहार किया था। मेरे मन में एक विशेष उद्देश्य छिपा हुआ था।

मुझे पूरी आशा थी कि वह फिर मेरे पास आयेगी, और अत्यन्त अधैर्य के साथ मैं उसकी चौथी बार के आने की प्रतीक्षा करने लगा। वह आयी। इस बार मैंने ऐसी घनिष्ठता से उससे बातें करना आरम्भ कर दिया कि मुझे स्वयम् आश्चर्य होने लगा। मैं प्रारम्भ में ही समझ गया था कि उसका शील-स्वभाव भले घर की लड़कियों का-सा है, और वह चाहती है कि उसके साथ अत्यन्त शिष्टतापूर्ण बर्ताव किया जाय। अबकी मैंने वैसा ही किया। इस बार मैंने उसकी आँखों में कृतज्ञता की-सी झलक देखी, जिससे मेरे रोम-रोम में एक अपूर्व पुलक का संचार होने लगा। पर उस दिन

भी वह कुछ नहीं बोली। 'गोलोस' नामक पत्र में उसके विज्ञापन छपाने की बात मुझे बाद में मालूम हुई थी। जीविका का कहीं कोई ठिकाना न देख कर उसने अन्त में विज्ञापन छपाने का निश्चय किया। विज्ञापन का मज़मून उसने इस प्रकार तैयार किया था—"एक भले घर की युवती महिला एक 'गवर्नेस' के रूप में किसी कुलीन परिवार के साथ विदेश की यात्रा करने को तैयार है।"

इसके बाद उसी पत्र के किसी दूसरे अंक में विज्ञापन ने यह रूप धारण कर लिया था—"एक युवती महिला इनमें से कोई भी काम स्वीकार करने को तैयार है—बच्चों को पढ़ाना-लिखाना, किसी स्त्री की सहचरी बनना, किसी रोगी की परिचर्या करना अथवा किसी गृहस्थ-परिवार के कपड़े सीना।" इस पर भी जब कहीं से कोई बुलावा नहीं आया, तो उसने एक दूसरे ढंग का विज्ञापन छपवाया। उससे भी जब कोई फल नहीं हुआ, तो अन्त में हताश होकर उसने अपने विज्ञापन के साथ अन्त में ये शब्द जोड़ दिये—"वेतन नहीं चाहिए, केवल भोजन और निवास का प्रबन्ध हो जाने से युवती महिला काम करने को राज़ी हो जायगी।" इस पर भी किसी ने उसे नियुक्त नहीं किया।

इसके बाद जब वह अत्यन्त दीन, करुण और उदास भाव से मेरे पास आयी, तो मैंने उस दिन का 'गोलोस' उठा कर उस में छपा हुआ एक विज्ञापन उसे दिखाया। उसमें लिखा था—"एक युवती महिला, जो कि अनाथ है, बच्चों को पढ़ाने-लिखाने और उनकी देख-भाल करने का काम करने को तैयार है, यदि कोई विधुर

अपने बच्चों के लिए उसे नियुक्त करें तो और अच्छा है। घर के काम-धन्धों में भी वह सहायता करेगी।"

वह विज्ञापन उसे दिखाते हुए मैंने कहा—"देखा! यह स्त्री विज्ञापन देने का ढंग जानती है। आज प्रातःकाल उसका विज्ञापन छपा है, और सम्भवतः आज ही संध्या को उसे नौकरी मिल जायगी।"

मेरी बात का इंगित वह समझ गयी। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा, और आँखें लाल हो आईं। उसने मुँह फेर लिया और फिर चुपचाप वहाँ से चली गयी। पर मेरी अनुभवी दृष्टि से वास्तविकता छिपी न रही। मैं समझ गया कि मेरी बात अवश्य अपना प्रभाव डालकर रहेगी। मैं जानता था कि अब वह निःस्वता की चरम सीमा को पहुँच चुकी है, और गिरो रखने के लिए कोई सिगरेट-केस भी अब उसके पास शेष नहीं रहा है। इसलिए मुझे पूरा विश्वास था कि आज जो बात मैंने उसके कानों में डाली है, उससे अभी वह भले ही नाराज़ हुई हो, पर विवशता के कारण उसे मानना ही होगा।

मेरा अनुमान सत्य निकला। तीन दिन बाद वह मेरे पास आई। उसका चेहरा एकदम पीला पड़ा हुआ था, और वह बेतरह घबराई हुई थी। मैं समझ गया कि आज कोई विशेष घटना उसके घर में घट गयी है, जिसके कारण वह पूर्णरूप से निराश्रय और निस्सहाय बन गयी है। इस बार वह एक ऐसी चीज़ गिरो रखने के लिए लायी जो मेरी कल्पना के अतीत थी। वह एक देवमूर्ति लाई थी। वह मूर्ति बहुत पुरानी थी, और यह अनुमान लगाना कठिन नहीं था कि

कई पीढ़ियों से उसके बाप-दादे उस मूर्ति की पूजा करते रहे होंगे, और वह स्वयम् भी निश्चय ही उसकी पूजा करती होगी, पर घोर दरिद्रता ने उसे दुर्गति की इस चरम सीमा को पहुँचा दिया था कि उस अन्तिम कम्बल को भी बेचने के लिए उसे बाध्य होना पड़ा ! उस मूर्ति को नक़ली ज़र्क-बर्क़ के कपड़े पहनाए गये थे। मैंने उस पर अहसान रखने की भावना से कहा—"अभी केवल मूर्ति के कपड़ों को गिर्वी रखो। उससे तुम्हारा काम कुछ समय के लिए चल जायगा, और मूर्ति तुम्हारे ही पास रह जायगी।"

"आपको क्या मूर्ति को लेने से कोई आपत्ति है ?"

"नहीं मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर शायद तुम्हें आपत्ति हो, इसलिए मैं तुम्हें यह सलाह दे रहा हूँ।"

"नहीं, मूर्ति और उसके कपड़े, दोनों ले लीजिये।"

"मैंने एक बात सोची है। मैं मूर्ति को बन्धक के रूप में नहीं लूँगा, बल्कि उसे अपने यहाँ की दूसरी मूर्तियों के साथ सजाकर रखूँगा, और उसके आगे एक अखंड दीप जलाए रहूँगा। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैं धर्म के मामले में बहुत कट्टर हूँ और बड़ा आस्तिक हूँ। बदले में मैं तुम्हें दस रूबल दूँगा।"

"पर मुझे दस रूबल नहीं चाहिए, पाँच से ही मेरा काम चल जायगा। इस बार मैं वास्तव में इस चीज़ को बन्धक से छुड़ाने का इरादा रखती हूँ।"

"क्यों ? दस रूबल लेने में तुम्हें क्या आपत्ति है ? मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यह चीज़ दस रूबल से कम मूल्य की नहीं

है।" उसकी आँखें फिर एक बार तीव्र प्रकाश से चमक उठीं। वह स्पष्ट ही समझ गयी थी कि मैं उसपर अहसान रखना चाहता हूँ! इस बार उसने कोई उत्तर मेरी बात का न दिया। मैंने इस सम्बन्ध में अधिक कुछ कहना व्यर्थ समझकर उसे पाँच रूबल दे दिये और फिर कहा—"यह भूल कर न समझना कि मैं किसी व्यक्ति को तंगी की हालत में देककर—उसे घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। मैं स्वयम् दरिद्रावस्था में अपने दिन बिता चुका हूँ। मैं दूसरों की चीज़ों को बन्धक में रखने का पेशा सदा से करता आया हूँ। मैंने जीवन में बहुत कष्ट सहे हैं, इसलिए—"

"तो यह कहिये कि आपने समाज के विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना से यह पेशा अख्तियार किया है। क्यों, ठीक है न?" यह कहते हुए वह मुस्कराई। उसकी मुसकान मार्मिक होने पर भी उसमें सहज निर्दोष भाव वर्तमान था।

मैंने मन-ही-मन कहा—"अच्छा! तो तुम्हारा वास्तविक रूप यह है! अब समझ में आया कि तुम्हारे स्वभाव का विकास किस ओर हो रहा है।" प्रकट में बोला—"तुम्हारा अनुमान ठीक हो सकता है। पर मैं उन लोगों में से हूँ जो यदि कुछ बुराई भी करते हैं, तो उन का उद्देश्य भलाई का रहता है।"

वह तत्काल बोल उठी—"ज़रा ठहरना! ये शब्द मैंने किसी पुस्तक में पढ़े हैं; उसका कुछ भला-सा नाम है।"

"मैं बता देता हूँ। ये शब्द गेटे के नाटक से मैंने लिए हैं। शैतान फ़ौस्ट को अपने चरित्र के विशेषत्व का परिचय देते हुए ऐसा

कहता है। पर इससे यह न समझना कि मैंने अपने घृणित पेशे की सफ़ाई देने के लिए शैतान के उक्त कथन को दुहराया है। मेरा पेशा शोषण करने का है, और इस बात को मैं छिपाना नहीं चाहता।"

"आप बड़े अजीब आदमी हैं। मैंने आपके सम्बन्ध में कभी इस तरह की बात नहीं सोची थी।"

असल में उसका आशय यह कहने का था—"मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि तुम एक शिक्षित व्यक्ति हो।" मैं स्पष्ट देख रहा था कि मेरा साहित्य-सम्बन्धी ज्ञान देखकर वह यथेष्ट प्रसन्न हो उठी थी। मैंने कहा—"पर मैं यह बात फिर भी कहूँगा कि यदि कोई व्यक्ति चाहे तो वह अपने घृणित से घृणित पेशे में भी कुछ-न-कुछ अच्छाई ला सकता है।"

उसने एक मर्मभेदी विद्युत् दृष्टि से मुझे देखते हुए कहा—"आप ठीक कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति भलाई करना चाहे, तो वह किसी भी परिस्थिति में ऐसा कर सकता है।" उसका एक-एक शब्द आत्मविश्वास से पूर्ण था, जिसके फलस्वरूप मेरे मन पर उसकी बात का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा।

उस दिन जब वह मेरे पास से विदा हुई, तो उसके प्रत्येक कथन का एक-एक शब्द मेरे हृदय के चारों ओर जादू का-सा मन्त्र फूँकने लगा। जो गुप्त उद्देश्य मेरे भीतर इतने दिनों से विकसित होता जाता था उसने उस दिन निश्चित रूप धारण कर लिया। मैंने उसके पिछले जीवन के प्रत्येक भेद का पता लगाना आरम्भ कर दिया।

इस सम्बन्ध में बहुत-सी बातें मुझे ल्यूकेरिया नाम की नौकरानी से मालूम हो गयी थीं। जिस मकान में वह लड़की रहती थी वहाँ ल्यूकेरिया बहुत दिनों से काम करती थी। ल्यूकेरिया ने जो बातें मुझे बताई थीं वे ऐसी भयंकर थीं कि उनसे परिचित होने पर उस लड़की के स्वभाव की आश्चर्यजनक स्थिरता और धीरता देखकर मैं दंग रह गया था। मैंने सोचा कि उसमें जवानी का जोश होने से वह उन सब दिल दहलाने वाले संकटों को सहन करने में समर्थ हुई है। इस बात से उसके प्रति मैं और अधिक आकर्षित हो उठा। साथ ही इस बात की कल्पना से मैं रह-रहकर हर्षित हो उठता था कि मैंने अपनी बातों से और व्यवहार से उस पर गहरा प्रभाव डाल दिया है, और मुझे इस बात पर पूर्ण विश्वास हो गया था कि अब वह मेरे चंगुल से बच नहीं सकती—उस पर मेरा अधिकार हो चुका है।

२

मैंने गुप्त रूप से उसके जीवन के सम्बन्ध में जो बातें मालूम कीं वे संक्षेप में कही जा सकती हैं—उसके मा-बाप को मरे तीन वर्ष हो चुके थे। उनकी मृत्यु के बाद वह अपनी दो फूफियों की संरक्षकता में रहने लगी। फूफियों की न तो सांसारिक स्थिति ही कुछ अच्छी थी, न समाज में ही उनकी कोई विशेष प्रतिष्ठा थी। उसका पिता किसी आफ़िस में एक साधारण क्लर्क था। मेरी सामाजिक स्थिति उससे कहीं अच्छी थी, क्योंकि मैंने एक स्टाफ़-कैप्टेन की पदवी प्राप्त करके नौकरी से अवसर ग्रहण किया था; और मेरा जन्म भी एक अच्छे कुल में हुआ था। इसके अतिरिक्त मेरी आर्थिक स्थिति भी खासी अच्छी

थी। इसलिए मुझे पूरी आशा थी कि उसकी फूफियाँ मेरे पेशे के बावजूद मेरे प्रति अवज्ञा प्रकट नहीं करेंगी।

फूफियों के बीच में उस अनाथ लड़की के दिन बड़े कष्ट में बीत रहे थे, यह बात मुझे मालूम हो चुकी थी। दिन-रात उन दोनों की दासता करते रहने पर भी उसने किसी प्रकार प्रवेशिका परीक्षा पास कर ली थी। इससे स्पष्ट ही यह प्रकट होता था कि अत्यन्त हीन परिस्थितियों के बीच में जीवन बिताने पर भी उसके भीतर उच्चाकांक्षा के भाव वर्तमान हैं। पर कुछ भी हो, मेरे मन में उससे विवाह करने की भावना क्यों जगी? दूसरा कोई व्यक्ति मेरे ही समान अधेड़ अवस्था वाला यदि उस नव-प्रस्फुटिता कोमल कलिका से सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा रखता, तो मैं निश्चय ही उसके मुँह पर थूक देता। पर स्वयम् मेरा इतना पतन कैसे सम्भव हुआ? इसमें क्या मेरा दोष था, या उस लड़की के जादू के से आकर्षण का?

कुछ भी हो, मैंने पता लगाकर यह मालूम किया कि वर्तमान समय में वह लड़की अपनी फूफियों के कपड़े सीने, फ़र्श साफ़ करने, और फुफेरे भाई-बहनों को पढ़ाने-लिखाने में व्यस्त रहती थी। किसी भी काम में ज़रा-सी त्रुटि होने पर उस पर बुरी तरह से मार पड़ती। मुझे यह भी मालूम हुआ कि उसकी फूफियों ने अब उसे किसी के हाथ बेच देने का निश्चय किया है। जिस मकान में वह रहती थी उसकी बग़ल में एक मोटे क़द का और अधेड़ अवस्था का दुकानदार रहता था, जो बनिये का पेशा करता था। वह अपनी दो स्त्रियों को क़ब्र में गाड़ चुका था, और तीसरी की खोज

में था। उस लड़की को वह नित्य देखता था और उसकी फूफियों के अमानुषिक व्यवहार से वह भली-भाँति परिचित था, इसलिए उस लड़की पर उसकी आँखें गड़ गयी थीं और वह एक मोटी रक़म से उसकी फूफियों को प्रसन्न करके उसके साथ विवाह करने का निश्चय किये बैठा था।

इस उद्देश्य से प्रेरित हो कर वह पचास वर्ष का बुड्ढा उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित करने लगा। वह आतंक से काँप उठी। अपनी फूफियों के और उस बुड्ढे के फ़ौलादी पंजों से किस प्रकार अपनी जान छुड़ाये, इस चिन्ता से वह रात-दिन बेचैन रहने लगी। अन्त में उसने 'गोलोस' नामक पत्र में विज्ञापन छपा कर नौकरी के लिए चेष्टा करने का इरादा किया, और इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर विज्ञापन के लिए पैसा जुटाने को उसने मेरे यहाँ आना-जाना आरम्भ कर दिया। इसी बीच उसने अपनी फूफियों से प्रार्थना की कि वे उसे उस बुड्ढे खूसट से विवाह करने के सम्बन्ध में सोच-विचार करने के लिए कुछ समय की मोहलत दें। फूफियों ने कहा कि उसे जो कुछ निश्चय करना हो जल्दी कर ले और साथ ही स्पष्ट शब्दों में यह भी जता दिया कि अब वे अधिक समय उसे अपने साथ रखने में असमर्थ हैं। मुझे अपने गुप्तचरों द्वारा ये सब बातें मालूम हो गयी थीं, और उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया था कि उसकी फूफियों को मैं अपनी इच्छा से परिचित कराऊँगा।

संध्या को जब मैं उस लड़की के मकान में पहुँचा, तो उस समय वह बुड्ढा दुकानदार प्रायः आधे रूबल की मिठाइयाँ अपने

साथ लेकर उस लड़की के निकट अपना प्रेम-निवेदन करने आया हुआ था। मैंने रसोईघर में जाकर ल्यूकेरिया को इशारे से अपने पास बुलाया, और उसे धीमे स्वर में यह सन्देशा उस लड़की तक पहुँचाने को कहा कि मैं एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से उससे मिलने आया हूँ।

मैं फाटक पर खड़ा रहा। जब वह लड़की आयी, तो मैंने ल्युकेरिया के सामने उससे कहा—"मेरी आकस्मिक भेंट से तुम्हें आश्चर्य नहीं होना चाहिए, और न घबराना ही चाहिए। तुम्हारी मान और मर्यादा का मुझे पूरा खयाल है। मैं तुम्हारी जीवन की सब परिस्थितियों से भली भाँति परिचित हूँ, और सब जानते हुए तुमसे यह निवेदन करने आया हूँ कि मैं तुम्हारे साथ विवाह करने का इरादा रखता हूँ। मेरी बात सुनकर घबराओ नहीं; पहले मेरी सब बातें सुन लो। मैं एक नीच मनोवृत्तिवाला घोर अहंवादी और स्वार्थी व्यक्ति हूँ, और जो पेशा मैंने अख्तियार किया है वह भी नीच है। मेरे साथ जीवन बिताने से तुम्हें विशेष सुख प्राप्त नहीं होगा, यह भी मैं भली भाँति जानता हूँ। पर साथ ही मैं तुम्हें यह भी जता देना चाहता हूँ कि अपनी नीचता और पशुता के साथ निरन्तर मेरा द्वन्द्व चलता रहता है। मैं मानता हूँ कि प्रारम्भिक जीवन में मेरे जो आदर्श थे उनसे मैं बहुत गिर गया हूँ, पर फिर भी मैंने चीज़ों को बन्धक में रखकर रुपया उधार देने का जो पेशा पकड़ा है उसके मूल में एक विशेष उद्देश्य छिपा हुआ है। उसके पूरा होने के पहले उसके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहूँगा और जब तक मैं अपने उस लक्ष्य को नहीं पहुँच जाता, तब

तक मैं न तो तुम्हारे लिए क़ीमती कपड़े खरीदूँगा, न थियेटर में ले जाऊँगा और न ही नाच-पार्टियों में। मैं पहले से ही स्पष्ट बातें कह देना उचित समझता हूँ। अब तुम सोचकर उत्तर दो कि मेरा प्रस्ताव तुम्हें स्वीकार है या नहीं।"

मैं बड़े ग़ौर से उसके मुख के प्रत्येक भाव-परिवर्तन पर लक्ष्य कर रहा था। वह बहुत अधिक घबराई हुई जान पड़ती थी और स्पष्ट ही हौलदिल हो रही थी। अत्यन्त गम्भीर चिन्ता में निमग्न रहने के कारण उसकी भौंहों के ऊपर बल पड़ गये थे। मैं समझ गया कि इसके पहले ऐसे असमंजस में वह कभी नहीं पड़ी थी। मैं सोचने लगा—"क्या वह उस खूसट दुकानदार से मेरी तुलना करके यह सोच रही है कि हम दोनों में से कौन आपेक्षिक रूप से अच्छा है? यदि वह ऐसा सोचती है, तो यह सरासर मेरा अपमान है। नहीं, वह इस तरह की बात नहीं सोच सकती। मैं उसके स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हो चुका हूँ, और मुझे पूरा विश्वास है कि उस बुड्ढे से वह जितनी घृणा करती होगी, उतनी मैं भी नहीं कर सकता।"

अन्त में उसने कहा—"मैं कुछ समय बाद आपके प्रश्न का उत्तर दूँगी। मुझे सोचने का समय दीजिये।"

मैं जाने लगा। कुछ ही दूर पहुँचने के बाद मैंने देखा कि ल्यूकेरिया मेरे पीछे दौड़ी चली आ रही है। मैं ठहर गया। मेरे पास आकर ल्यूकेरिया ने अत्यन्त उत्साह के साथ कहा—"भगवान आपका भला करे। आपने उस बेचारी को डूबने से बचा लिया। आप न आये होते, तो उस फूहड़ बुड्ढे से उसका विवाह हो ही

गया होता। वह मुझे सूचित कर चुकी है कि आपके प्रस्ताव को वह स्वीकार करती है। पर उससे यह न कहियेगा कि आपने उस बुड्ढे से उसकी रक्षा करके उस पर कृपा की है। कारण यह है कि वह बहुत अभिमानिनी है और इस प्रकार की बातें सुन कर उसे दुःख होना स्वाभाविक है।"

वह अभिमानिनी है! ठीक है, मुझे उसके स्वभाव की इस विशेषता का परिचय पहले ही मिल चुका था। इसी कारण तो मैं उसके प्रति ऐसी प्रबलता के साथ आकर्षित हुआ था। मुझे अभिमानिनी लड़कियाँ बहुत पसन्द हैं। कुछ भी हो, मुझे यह समझने में देर न लगी कि वह अपनी विवशता के कारण ही मेरे प्रस्ताव पर राज़ी हुई है। उसने निश्चय ही यह सोचा था कि दोनों में से किसी के साथ भी वह सुखी नहीं रह सकती, पर उस अशिक्षित और असभ्य बुड्ढे दुकानदार की पशुता की अपेक्षा उसे मेरे स्वभाव की नीचता कम असह्य मालूम हुई होगी, क्योंकि वह जान गयी थी कि मैं घृणित व्यवसाय करने पर भी शिक्षित हूँ, साहित्यिक रुचि रखता हूँ और गेटे की पंक्तियों को दुहरा सकता हूँ। पर वास्तव में हम दोनों में से उसके लिए कौन अधिक खतरनाक था, इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर उसे उस समय नहीं मिल सकता था। बाद में जब उसे यथार्थता मालूम हुई होगी तब काफ़ी देर हो चुकी थी।

३

मैं यह जानते हुए भी कि वह मुझे चाहने के कारण नहीं, बल्कि अपनी विवशता के कारण मुझसे विवाह करने को राज़ी हुई है,

गर्व से फूला नहीं समाता था। इसी एक बात से पाठकों को मेरे स्वभाव की चरम नीचता और भयंकरता का पता लग जाना चाहिए। पर यह बात भी आप लोग न भूलें कि मैंने उस समय वास्तव में उसे घोर नारकीय पंकिलता में डूबने से बचाया था।

कुछ भी हो, मैं बहुत प्रसन्न था। विशेषतः यह सोच-सोच कर मैं अधिक पुलकित हो रहा था कि मेरी आयु ४१ वर्ष की है, और वह केवल सोलह वर्ष की नवोढ़ा है। दोनों की आयु में इतना अधिक वैषम्य और व्यवधान होने के कारण मुझे लज्जित होना चाहिए था, पर मैं हर्ष-विभोर हो रहा था। मैं सोच रहा था कि वह अछूती लड़की जब अपनी समस्त सुकुमार मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति के साथ मेरे आलिंगन-पाश में बँधेगी, तो उसकी अनुभूति मुझे कितना हर्ष-विभोर और पुलकाकुल नहीं करेगी।

मैंने अँगरेज़ी ढंग से विवाह करने का विचार किया। अँगरेज़ी ढंग से मेरा यह आशय था कि विवाह के अवसर पर उसके और मेरे अतिरिक्त केवल दो गवाह उपस्थित रहेंगे (जिनमें से एक ल्यूकेरिया होगी) और कोई नहीं रहेगा। उसके बाद मैंने निश्चय किया कि मैं उसे लेकर सीधे मास्को चला जाऊँगा, और वहाँ किसी होटल में दो-एक सप्ताह ठहरूँगा। पर उसने मेरे इस प्रस्ताव को अस्वीकृत किया। उसने कहा कि विवाह समाप्त होते ही हम दोनों को उसकी फूफियों के पास जाना होगा—उसकी वही फूफियाँ जिनसे मैं उसका उद्धार करने पर तुला हुआ था! उसके हठ करने पर अन्त में मुझे उसी की बात पर राज़ी होना पड़ा। पर उन दुष्ट फूफियों ने किसी भी

रस्म की अदायगी में शरीक होने से साफ़ इनकार कर दिया। जब मैंने उनमें से प्रत्येक के हाथ में सौ रूबल थमाए तब वे राज़ी हुई। पर मैंने इस बात की सूचना अपनी भावी पत्नी को तनिक भी नहीं दी—इस खयाल से कि अपनी फूफियों की घोर नीचता का हाल सुनकर उसके हृदय को गहरी चोट पहुँचेगी।

किसी प्रकार विवाह-कार्य प्रायः सभी रस्मों की अदायगी के साथ सम्पन्न हो गया। विवाह के बाद प्रथम मिलन के दिन से ही वह मेरे साथ अत्यन्त सहृदय और प्रेमपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करने लगी। सन्ध्या को जब मैं दुकान से लौटकर घर वापस आता तो वह हर्ष-विभोर होकर मुझसे मिलने के लिए दौड़ी चली आती। मुझसे अपने बचपन के और उसके बाद के जीवन की सब बातें एक-एक करके सुनाती। अपने माँ-बाप के साथ उसके दिन किस प्रकार बीते थे, किस प्रकार के सुखों और दुखों का अनुभव उसने किया था, आदि सभी बातों का वर्णन वह विस्तारपूर्वक गद्‌गद भाव से मेरे आगे करती, और स्वभावतः मुझसे सहानुभूति की आशा करती। पर मैं बड़ी रुखाई के साथ उसकी बातें सुनता, उसके सारे उत्साह पर बर्फ़ का पानी डाल देता! मैं जानबूझ कर ऐसा करता था, क्योंकि मैं प्रारम्भ में ही उसे जता देना चाहता था कि मेरे यहाँ उसे बड़े कड़े नियमों का पालन करके रहना होगा, और अपनी भावुकता को दबाना पड़ेगा। मेरे इस प्रकार के बर्ताव से उसे यह समझने में देर न लगी कि हम दोनों मूलतः विभिन्न प्रवृत्तियों के प्राणी हैं, और मैं एक रहस्यमय जीव हूँ। पर मज़ा यह है कि मैं

ज्यों-ज्यों इस बात की चेष्टा करता था कि मैं अपने स्वभाव की रहस्यात्मकता त्याग कर सहज रूप में उसके आगे प्रकट होऊँ, त्यों-त्यों मेरी बातें उसके लिए और अधिक रहस्यपूर्ण बनती जाती थीं।

अपने अहंभाव के ओछेपन के कारण मैंने उसके लिए कुछ विशेष नियम निर्धारित कर दिये थे, और परोक्ष रूप से उसे इस बात की चेतावनी दे दी थी कि उसे उन्हीं बँधे नियमों के अनुसार अपने जीवन का निर्माण करना होगा, अन्यथा मेरे घर में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। आप लोग किसी दूसरी दृष्टि से मेरी इस कड़ाई पर विचार न करें। मैंने जो नियम बनाये थे उसके मूल में हित-भावना के सिवा कोई दूसरी बात नहीं थी। वास्तव में मेरा उद्देश्य उसकी आत्मा को कष्ट पहुँचाने का नहीं था। पर अब मैं समझ रहा हूँ कि मेरा ढंग बहुत ग़लत था।

बात यह थी कि घरगृहस्थी के मामलों में उसके और मेरे विचारों के बीच मतभेद होना स्वाभाविक था। वह एक नवयौवन-प्राप्त लड़की थी। उसके हृदय में नये उल्लास और नयी उमंगें जोर मार रही थीं; पर मैं एक अनुभव-प्राप्त खुर्राँट था। मैं रुपये-पैसे को स्वभावतः बहुत महत्त्व देता था, पर वह उसे अत्यन्त तुच्छ चीज़ समझती थी। इसलिए मैं बार-बार उपदेश देते हुए उसके मन पर यह बात जमा देने की चेष्टा करता रहता था कि घर को तुच्छ समझने से वह वैवाहिक जीवन के मूल सिद्धान्त से परिचित नहीं हो सकेगी। कुछ समय तक वह इस सम्बन्ध में मेरी बात का खंडन करते हुए बहस करती रहती, पर मेरी हठकारिता से तंग आकर अन्त में उसे चुप रह

जाना पड़ता। पर उसके चुप रहने का यह अर्थ नहीं था कि वह मेरे सिद्धान्त की क़ायल हो गई है, बल्कि उस मौनभाव से मेरे प्रति उसकी घृणा का भाव ही अधिक व्यक्त होता था। मैं उसे यह जतान चाहता था कि मेरे सिद्धान्त बाहर से अत्यन्त कठोर, संकीर्ण और नीचतापूर्ण मालूम होने पर भी वास्तव में मैं भीतर से बहुत सदाशय और उदार हूँ। पर मेरी इस तरह की कैफ़ियत सुन कर वह केवल घृणा और व्यंग से भरी मुसकान अपनी आँखों में और होठों में झलका देती।

और भी बहुत-से मूर्खतापूर्ण उपायों को मैं उस पर अपनी धौंस जमाने के लिए काम में लाता। उदाहरण के लिए, मैंने एक बार उससे स्पष्ट शब्दों में कहा कि युवावस्था बहुत सुन्दर है, सन्देह नहीं, पर जहाँ जीवन की गहनता की जाँच होती है, वहाँ यौवन का कोई मूल्य नहीं रह जाता। इसका कारण मैंने यह बताया कि उस अवस्था में व्यक्ति को जीवन की वास्तविकता तनिक भी अनुभव नहीं हो पाती; इसके अतिरिक्त यौवन का सौन्दर्य व्यक्ति की किसी साधना के बिना ही, सहज में उसे प्राप्त हो जाता है। पर जीवन के वास्तविक महत्त्व का परिचय तभी मिलता है जब व्यक्ति दीर्घकाल-व्यापी निजी साधना द्वारा बिना किसी बाह्य प्रदर्शन के भीतर ही भीतर गहन अनुभवों के ताप से अपनी आत्मा को प्रज्वलित करता है। इस कथन द्वारा मैंने स्पष्ट ही उसके जीवन से अपने जीवन की तुलना करके उसे नीचा दिखाना चाहा। मेरे उद्देश्य को समझने में उसे देर न लगी। पर उसने इस सम्बन्ध में कोई विवाद मुझ से नहीं किया, केवल तीक्ष्ण व्यंग की एक मर्मभेदी दृष्टि से मुझे घूर कर उसने मुँह फेर लिया।

४

मैंने अपनी स्त्री को धीरे-धीरे यह बात भी स्पष्ट जता दी कि मैंने उससे राग-रंग अथवा जीवन के आनन्द के लिए विवाह नहीं किया है, बल्कि विवाह के रूप में मैंने उसे एक अचल सम्पत्ति के बतौर मोल लिया है। वास्तव में उसे यह समझाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वह स्वयम् दो-चार दिन के भीतर समझ गयी थी कि मेरे घर में उसकी वास्तविक स्थिति क्या है। मैंने दो कमरे किराये पर ले रखे थे, जिनमें से बाहर का कमरा (जो दूसरे कमरे से बड़ा था) दूकान के रूप में व्यवहृत होता था, और उसी कमरे में 'पार्टीशन' द्वारा थोड़ा-सा स्थान आफ़िस के लिए भी निकाल लिया गया था। दूसरे कमरे में हम दोनों सोते भी थे, और जो लोग हमसे मिलने आते थे उन्हें वहीं बैठाते भी थे। उस कमरे में 'फ़र्निचर' अत्यन्त साधारण था, जिसे देखकर उसकी फूफियाँ भी निश्चय ही मुँह बिचकातीं। ल्यूकेरिया को मैंने अपने पास काम करने को रख लिया था। मैंने अपनी पत्नी को घर के ख़र्चे के लिए प्रतिदिन एक रूबल देने का नियम बना लिया था, और उसे सूचित कर दिया था कि उतने से अधिक एक पाई भी मैं नहीं दे सकता, चाहे कैसी ही आवश्यकता क्यों न पड़े। अपनी इस कंजूसी का कारण भी उसे बता देना मैंने आवश्यक समझा। मैंने कहा—"मैं अगले तीन वर्षों के भीतर तीस हज़ार रूबल जोड़ने का इरादा रखता हूँ।"

उसने मेरे किसी भी व्यवहार के सम्बन्ध में प्रकट रूप से कभी किसी प्रकार की आपत्ति प्रकट नहीं की। मैं जानता था कि उसके

समान एक नवयौवना लड़की के हृदय में थियेटर देखने की आकांक्षा का होना स्वाभाविक है। पर मैंने प्रारम्भ में ही इस सम्बन्ध में उसके उत्साह को एकदम ठंडा कर देने का इरादा किया, और उसे यह जता दिया कि उसे महीने में एक दिन के अतिरिक्त थियेटर जाने की आज्ञा मैं नहीं दूँगा। महीने में एक बार जब हम लोग थियटर देखने जाते, तो मैं उसके और अपने लिए सबसे निम्नश्रेणी का टिकट खरीदता। हम दोनों मौनभाव से जाते और मौन अवस्था में ही वापस आते। क्योंकि हम दोनों ने एक-दूसरे से बहुत कम बोलने का नियम बना लिया था। क्यों? इसका उत्तर क्या दूँ, स्वयम् मेरी समझ में नहीं आता! वह बीच-बीच में मेरी ओर कनखियों से देखती थी—शायद वह यह चाहती थी कि मैं किसी विषय पर वार्त्तालाप आरम्भ करूँ। पर मैं उसका मनोभाव ताड़कर और अधिक गम्भीर और मौन हो जाता। बीच-बीच में उसके भावोच्छ्वास उमड़ पड़ते थे, और ऐसे अवसरों पर वह मुझे गाढ़ आलिंगन-पाश में बाँधती हुई दो-एक गद्गद और अस्फुट शब्द मुँह से निकालकर यह चेष्टा करती कि मैं अपना अटूट मौन भंग करूँ। पर चूँकि मैं क्षणिक उच्छ्वासों से विचलित होने वाला व्यक्ति नहीं हूँ, और सुदृढ़ तथा स्थायी भावों को महत्त्व देता हूँ, इसलिए उसके इन उपायों से भी मेरे भाव में कोई परिवर्तन नहीं होता था। वास्तव में उसके क्षणिक भावोच्छ्वासों के सम्बन्ध में मेरी धारणा बिलकुल ठीक थी। क्योंकि जब कभी रात में वह इस प्रकार का भावोच्छ्वास व्यक्त करती थी, उसके दूसरे ही दिन प्रातःकाल उसकी प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती, और वह मुझसे झगड़ने लगती। बात स्पष्ट यह थी कि वह अपने अन्तस्तल में मुझसे भयंकर रूप से घृणा करती थी।

ऐसे अवसरों पर यदि वह न भी झगड़ती, तो उसके प्रत्येक हाव-भाव से मेरे प्रति क्रोध तथा घृणा का भाव स्पष्ट प्रकट होता था, और उसकी आँखों से अपनी विवशतापूर्ण परिस्थिति के प्रति घोर विद्रोह की ज्वालामयी लपटें धधकती हुई दिखाई देतीं। उसका यह विद्रोहात्मक भाव प्रतिदिन बढ़ता ही चला जाता था। इसका फल यह देखने में आता कि मैं अपनी मनोभावना को सुकोमल रूप देकर अपनी पत्नी के प्रति मानवीय सहृदयता का परिचय देने के बजाय उसके प्रति और अधिक रुखाई से पेश आने लगा।

हम दोनों के वैमनस्य का मूल कारण पाठकों को मालूम हो चुका होगा। वह था मेरी निपट सांसारिक मनोवृत्ति। मैं उसके तथा अपने सम्बन्ध की प्रत्येक बात को अपने सांसारिक स्वार्थ के तराज़ू पर तौलता था, और यह बात उसे क़तई पसन्द नहीं थी। उसके तरुण हृदय में जीवन-वैचित्र्य की जो रंगीन भावनाएँ इन्द्रजाल की माया सृजन करती थीं, मेरे रूखे और सांसारिक संकीर्णतापूर्ण व्यवहार से उसमें एक गहन अन्धकारमयी छाया पड़ जाती थी। इस कारण मेरे प्रति उसका विद्वेष दिन पर दिन बढ़ता चला जाता था। चूँकि मैंने महीने में एक बार से अधिक थियेटर दिखाने से मना कर दिया था, इसलिए उसने मेरी कंजूसी के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के उद्देश्य से थियेटर का पूर्ण बहिष्कार कर दिया; चूँकि मैंने कपड़ों के सम्बन्ध में भी किफ़ायतशारी की मनोभावना प्रकट की थी, इसलिए उसने एक भी नया कपड़ा पहनने से साफ़ इनकार कर दिया। मेरी समझ में नहीं

आता था कि जिस लड़की का पूर्व जीवन घोर दारिद्रता के बीच में बीता है, वह मेरे यहाँ अपेक्षाकृत अच्छी दशा में रहने पर भी मेरी साधारण-सी मितव्ययिता के कारण क्यों इस क़दर भड़क उठी है। तब मैं नहीं समझ पाया कि उसके विद्रोह का कारण उसके स्वप्नों का भंग होना था। अपने पिछले जीवन में कठोर कष्टों के बीच में रहने पर भी वह यह रंगीन आशा अपने मन में पाले हुए थी कि भविष्य में निश्चय ही वह अनन्त राग-रंगों से पूर्ण मुक्त जीवन वितायेगी; पर मेरे साथ विवाह के बन्धन में बँध जाने पर वह समझ गई कि मृत्यु-पर्यन्त उसे अत्यन्त संकीर्ण और स्वार्थपूर्ण बन्धनों के जटिल जंजाल से छुट्टी मिलने की नहीं, इसीलिए उसका वह आक्रोश था। मैं स्वप्नलोक की दुनिया में विचरने वाली सोलह वर्ष की लड़की को कैसे समझाता कि मेरी संकीर्ण सांसारिकता और कंजूसी मेरी दीर्घ-दृष्टि का फल है ? मैं कैसे उसे इस तथ्य के विशेषत्व से परिचित कराता कि मुझ जैसे समाज से वहिष्कृत और पीड़ित व्यक्ति को किसी भी उपाय से लखपती बनने का पूरा अधिकार है—चाहे दूसरों की चीज़ों को बन्धक रख कर रुपया उधार देने का पेशा अख्तियार करके ही क्यों न हो ?

मैं बखूबी जानता था कि वह मेरे पेशे से बहुत जलती है, और उसे अत्यन्त घृणित और नीच व्यवसाय समझती है। मैं जानता हूँ कि कोई भी कुलशील-सम्पन्न व्यक्ति इस प्रकार का पेशा नहीं कर सकता। पर व्यक्ति की विशेष परिस्थितियों में सब कुछ सम्भव और क्षम्य है। पर उसके जवानी के जोश से पूर्ण विद्रोही हृदय में इस

सम्बन्ध में तनिक भी क्षमा का भाव वर्तमान नहीं था—उसकी आँखों के भाव से, उसके व्यवहार से, इस बात का स्पष्ट परिचय मिलता था। पर मैं अपनी सफ़ाई में उससे कुछ नहीं कहता था। केवल अपने का यह कह कर समझाता था कि धीरे-धीरे कुछ वर्षों बाद वह स्वयम् मेरे आचरण की महत्ता से परिचित हो जायगी और तब मेरे पैरों पर लोट कर अपने वर्तमान व्यवहार के लिए क्षमा-प्रार्थना करेगी। आज मैं समझ रहा हूँ कि मेरे अत्यधिक अहंभाव के कारण इस तरह की कल्पना मेरे मन में उपजी थी, और मेरा यह दुर्दमनीय अहंभाव ही उस अनर्थ का मूल हुआ है, जो आज मेरी आत्मा को क्षत-विक्षत कर रहा है।

५

हम दोनों के बीच प्रकट रूप से झगड़ा तब हुआ जब एक दिन एक बुढ़िया मेरे पास एक प्राचीन मुद्रा लेकर आई। वह बुढ़िया उस मुद्रा को गिर्वी रखकर मुझसे रुपया उधार माँगने आई थी। वह मुद्रा उसके स्वर्गीय पति ने उसे स्मृतिचिह्न के रूप में प्रदान किया था। मैंने प्रथम दृष्टि में ही मालूम कर लिया कि वह चीज़ वास्तव में मूल्यवान है। मैं उसे बन्धक के रूप में स्वीकार न कर तीस रूबल बुढ़िया के हवाले करके तत्काल उसे खरीद लेना चाहता था। पर मेरे इस प्रस्ताव पर बुढ़िया रोने लगी और बोली कि चूँकि वह उसके पति का स्मृतिचिह्न है, इसलिए उसे बेचना नहीं चाहती। मैंने अन्त में उसकी बात मान ली। पाँच दिन बाद वही बुढ़िया फिर आई, और एक साधारण सा कंगन मेरे पास रखते हुए यह प्रार्थना करने लगी कि

उस ऐतिहासिक मुद्रा के बदले में उस कंगन को अपने पास बन्धक-स्वरूप रख लूँ। पर मैंने साफ़ अस्वीकार कर दिया, क्योंकि मैं जानता था कि उस कंगन का मूल्य आठ रूबल से अधिक नहीं है। मेरी स्त्री उस समय मेरे ही पास बैठी थी। बुढ़िया ने उसकी ओर करुण-कातर दृष्टि से देखा। पर उस समय वह कुछ न बोली और चुपचाप वापस चली गई। बाद में वह मेरी अनुपस्थिति में मेरी स्त्री के पास आई और उससे प्रार्थना की कि वह मुझ पर अपना प्रभाव डालकर प्राचीन मुद्रा के बदले कंगन स्वीकार कर लेने को राज़ी करे।

बाद में जब मेरी स्त्री ने मुझसे बुढ़िया की तरफ़ से सिफ़ारिश की, तो मैंने शान्त किन्तु दृढ़ स्वर में उसे समझा दिया कि मेरे व्यवसाय के सम्बन्ध की किसी बात पर हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार उसे नहीं है। वह एक विचित्र दृष्टिसे मेरी ओर देखती हुई कुछ समय तक मेरी बातें सुनती रही। सहसा उस पर जैसे कोई भूत सवार हो गया हो। उसका वह रूप मैंने न उसके पहले न बाद में कभी देखा। वह उन्माद-ग्रस्त-सी उछल कर उठ खड़ी हुई और आपे से बाहर होकर लातों से मुझे मारने लगी। वह एक हिंसक पशु की तरह क्रोधोन्मत्त हो उठी थी, और किसी तरह शान्त नहीं होना चाहती थी। काफ़ी देर तक वह लात पर लात जमाती चली गई। मैं स्तम्भित, विभ्रान्त और चकित होकर स्थिर खड़ा रहा। जब मैं कुछ सँभला, तो शान्त और स्थिर भाव से मैंने फिर एक बार उसे यह चेतवानी दी कि भविष्य में वह कभी मुझसे सम्बन्ध रखने वाली किसी भी बात पर हस्तक्षेप न करे। मेरी यह बात सुनकर

वह मुँह चिढ़ाने के इरादे से हँसी, और फिर वहाँ से उठकर बाहर चली गई।

उसके साथ विवाह करने के पूर्व उससे मेरी जो शर्तें तय हुई थीं इनमें से एक यह भी थी कि मेरी आज्ञा के बिना वह कहीं बाहर न जाने पावेगी। पर उसने उस शर्त की कुछ परवा न की, जिससे मेरा क्रोध बढ़ गया। सन्ध्या को वह वापस चली आई, पर मैंने फिर इस सम्बन्ध में उससे कुछ नहीं कहा।

दूसरे दिन सुबह वह फिर बाहर गई, और तीसरे पहर में भी उसने ऐसा ही किया। मैंने देखा कि लक्षण अच्छे नहीं हैं। दुकान बन्द करके मैं उसकी फूफियों से मिलने गया। विवाह होने के बाद मैं उन दोनों बूढ़ियों से नहीं मिला था। जब मैं उनके पास पहुँचा, तो मालूम हुआ कि मेरी स्त्री वहाँ नहीं है, और न वहाँ कभी गई थी। मैंने सब बातें उन्हें कह सुनाईं। उन्होंने बड़े कौतूहल के साथ मेरी बातें सुनीं, और अन्त में वे मेरी दुर्दशा का परिचय प्राप्त करके हँस पड़ीं और बोलीं "तुम्हारे समान व्यक्ति को उपयुक्त स्त्री मिली है!"

मैं इस अपमान को पी गया, और उन दोनों बहनों में से जो छोटी थी, उसे मैंने सौ रूबल घूस के बतौर देने का बचन दिया, जिनमें से पचीस रूबल पेशगी दे दिये। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वह मेरी स्त्री की गतिविधि का ठीक-ठीक पता लगाकर मुझे सूचना दें। दो दिन बाद उसने मेरे पास आकर सूचना दी कि इस मामले में कर्नल एफिमोविच का हाथ है। मैं समझ गया। उक्त

कर्नल उसी पलटन में रह चुका था जिसमें मैं नौकरी पर था। उसने पलटन में भी मेरे साथ बुरा व्यवहार किया था। मेरा विवाह हो जाने पर वह दो बार मेरी दुकान पर आया था। मुझे याद आया कि वह दोनों बार मेरी स्त्री के साथ हँस हँस कर बातें करता रहा था। मुझे उसका यह ढंग क़तई पसन्द नहीं आया था, इसलिए मैंने एक दिन उसके यहाँ जाकर उसे सचेत कर दिया था कि वह फिर कभी मेरे यहाँ न आया करे। पर तब मुझे इस सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं हुआ था कि वह मेरी स्त्री को बहकाने का इरादा रखता है। तब मैं केवल उसकी बदतमीज़ी और धृष्टता के कारण असन्तुष्ट हुआ था। पर मेरी स्त्री की छोटी फूफी ने मुझे विश्वास दिलाते हुए कहा कि इस समय वह कर्नल के यहाँ गई हुई है और साथ ही यह भी सूचित किया कि उन दोनों (मेरी स्त्री और कर्नल एफिमोविच) ने अमुक दिन उसके घर आकर मिलने का निश्चय किया है।

मैंने यह इरादा किया कि जिस कमरे में कर्नल और मेरी स्त्री की मुलाक़ात होगी, उसी की बग़ल में मैं भी एक कमरा किराये पर लेकर इस ढंग से रहूँगा जिससे मेरी स्त्री को तनिक भी सन्देह न हो।

जिस दिन की बात मैंने कही है उसके एक दिन पहले संध्या के समय मेरी स्त्री के और मेरे बीच एक महत्त्वपूर्ण घटना घट चुकी थी, जिसका उल्लेख मैंने अभी तक नहीं किया है। अँधेरा होने पर वह घर वापस आई थी। आते ही उसने ऐसा रुख़ अख़्तियार किया जिससे मैं ताड़ गया कि वह मुझ से किसी कारण से अथवा अकारण ही झगड़ने के लिए बेचैन है। इधर कुछ दिनों से उसके स्वभाव

में एक विचित्र परिवर्तन सा आ गया था। इसके पहले उसकी प्रकृति में नम्रता, शिष्टता और संकोच-शीलता का परिचय पाकर मैं मन-ही-मन बहुत प्रसन्न था। पर कुछ दिनों से एक ऐसी अस्वाभाविक ढिठाई उसके व्यवहार में आ गई थी जो मेरे मन में भयंकर अशान्ति उत्पन्न करने लगी थी।

भीतर प्रवेश करते ही उसने क्रोध के आवेश में अत्यन्त उद्दंडता के साथ पूछा—"क्या यह सच है कि तुम द्वन्द्वयुद्ध में भाग न लेने के कारण अपनी पलटन से निकाले गये थे?"

मैंने उत्तर दिया—"हाँ यह सच है। मेरे साथियों ने मुझसे किसी दूसरी पलटन में चले जाने के लिए अनुरोध किया, पर मैंने उनकी बात न मानी, और इस्तीफ़ा देकर चला आया।"

"तो तुम्हें एक कायर समझ कर निकाल दिया गया?"

"हाँ, मेरे साथियों ने मुझे अवश्य कायर समझा था। वे चाहते थे कि मैं एक विशेष व्यक्ति को द्वन्द्वयुद्ध की चुनौती दूँ, क्योंकि उनकी दृष्टि में उस व्यक्ति ने मेरा अपमान किया था। पर मेरी दृष्टि में उस व्यक्ति ने मेरा कोई विशेष अपमान नहीं किया था। इसलिए मैंने एक निरपराध व्यक्ति को प्राण संकट में डालने से अस्वीकार कर दिया। इस बात से मेरी कायरता नहीं, बल्कि मेरी सदाशयता का परिचय मिलता है।"

वह घृणापूर्वक हँसी, और फिर उसने दूसरा प्रश्न किया—"क्या यह भी सच है कि नौकरी से अलग होने के बाद तीन वर्ष तक तुम पीटर्सबर्ग की सड़कों में भिखारी के वेष में लोगों से पैसा माँगने का

पेशा अख्तियार किये रहे, और रात में बिलियर्ड खेलने की मेज़ों के नीचे सोते रहे ?"

"इसमें सन्देह नहीं कि नौकरी से अलग होने के बाद मैंने बड़े-बड़े कष्ट झेलकर अपने दिन बिताए। बड़ी हीनताओं के बीच में मुझे रहना पड़ा। पर मैंने अपना नैतिक पतन कभी नहीं होने दिया, क्योंकि मैं स्वयम् अपने उस जीवन से घृणा करता था और परिस्थितियों के कारण लाचार था।"

"ठीक ! और अब तुम एक महाजन बने बैठे हो !"

इस व्यंग से उसका तात्पर्य स्पष्ट ही यह था कि इस समय मैंने जो पेशा अख्तियार किया है, वह मेरे पिछले पेशों की अपेक्षा अधिक उन्नत नहीं है। पर मैं इस बार चुप हो रहा, यद्यपि भीतर ही भीतर मेरा जी जल रहा था।

कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद उसने कहा—"पर तुमने विवाह के पहले अपने पिछले जीवन की इन सब बातों के सम्बन्ध में किसी संकेत से भी कोई सूचना नहीं दी !" इस बात का भी कोई उत्तर मैंने नहीं दिया, और वह चुपचाप चली गई।

दूसरे दिन सन्ध्या के समय मैं उस कमरे के बग़ल वाले कमरे में छिपा रहा जहाँ कर्नल एफिमोविच के साथ मेरी स्त्री की भेंट होने वाली थी। मैं उन दोनों के वार्तालाप से इस बात का पता लगाना चाहता था कि वे मेरे भाग्य का क्या निर्णय करते हैं। अपनी जेब में मैंने एक गोली भरी हुई पिस्तौल छिपा कर रखली। मेरी स्त्री अपने अच्छे से अच्छे कपड़े पहन कर आयी

और कर्नल एफिमोविच भी बन ठन कर आया। दोनों आपस में गुप्त वार्तालाप करने लगे और मैं कान लगाकर बड़े ध्यान से सुनने लगा। कर्नल उसके आगे अपनी सारी आत्मा को खोलकर रखने की चेष्टा करते हुए प्रेम-निवेदन करने लगा। मैं काठ की दीवार के एक छिद्र से दोनों की ओर बड़े ग़ौर से देख रहा था और सोच रहा था कि वे दोनों प्राणी स्वभाव में एक-दूसरे के कितने विपरीत हैं! कर्नल मुझे एक अत्यन्त घृणित और नीच कामी कुत्ते की तरह लग रहा था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मेरी पत्नी के समान एक अतिशय सुकुमार-स्वभाव, निष्कपट और स्वभिमानिनी स्त्री ऐसे जानवर के साथ एकान्त में बातें करने को राज़ी क्योंकर हुई। पर वह उसकी नीच मनोवृत्ति से परिचित न हो, यह बात नहीं थी। यही कारण था कि जब-जब कर्नल उसे अपने आन्तरिक प्रेम का विश्वास दिलाता तब-तब वह अपनी तीक्ष्ण व्यंगोक्ति से उसकी बात के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक देती थी। पर वह दुष्ट यों ही हार मानने वाला न था। वह धीरे-धीरे अपनी कुर्सी को सरकाता हुआ अन्त में उसके एक दम पास जाकर बैठ गया।

असल बात यह थी कि वह मुझसे इस हदतक घृणा करने लगी थी कि मुझे ज़लील करने के इरादे से वह कर्नल से एकान्त में मिलने को राज़ी हो गई थी। प्रारम्भ में कर्नल के असंस्कृत स्वभाव से वह भले ही परिचित न रही हो, पर उसकी दो-चार बातें सुनने के बाद वह ताड़ गयी थी कि वह किस ढंग का व्यक्ति है। मुझसे वह चाहे कितनी ही असन्तुष्ट क्यों न रही हो, पर कर्नल के प्रति उसके समान आदर्श-परायण युवती कभी आकर्षित नहीं हो सकती, यह बात सम-

झते मुझे देर न लगी। वह बात-बात में अपने व्यंग-बाणों से कर्नल के हृदय को क्षत-विक्षत करने की चेष्टा कर रही थी। अन्त में कर्नल क्रुद्ध हो उठा, और उठ खड़ा हुआ। उस समय उसके मुख में ऐसा हिंसक भाव वर्तमान था कि मुझे भय हुआ, कहीं वह मेरी स्त्री पर झपट न पड़े।

घटना का अन्त ठीक वैसा ही हुआ जैसा मैं पहले ही से समझे बैठा था। मैं पहले से ही जानता था कि वह कभी कर्नल की बातों के फेर में नहीं आवेगी। उसके स्वभाव की इस विशेषता के कारण ही तो मैं उसके प्रति प्रबल रूप से आकर्षित हुआ था। मुझसे घृणा करने पर भी वह कभी अपने चरित्र से नहीं गिर सकती, इस बात पर मेरा ध्रुव विश्वास था। यह जानते हुए भी मैं अपने साथ पिस्तौल क्यों लेता गया था? यह मेरे स्वभाव की विकृति का परिणाम था।

कुछ भी हो, मैंने अकस्मात् दरवाज़ा खोला और उस कमरे में प्रवेश किया जहाँ वे दोनों इदनी देर तक बातें कर रहे थे। एफिमोविच मारे आश्चर्य और भय से घबरा कर उछल पड़ा। मैंने एक वक्र दृष्टि से उसकी ओर देखकर चुपचाप अपनी स्त्री का हाथ पकड़ा, और उससे अपने साथ चलने का आग्रह किया। वह भी मेरे आकस्मिक आगमन से कुछ कम स्तम्भित नहीं हुई थी। पर प्रकट रूप से उसने अत्यन्त शान्त भाव दिखाया और बिना एक शब्द के चुपचाप मेरे साथ चलने लगी।

जब मैं उसके साथ घर पहुँचा, तो वह एक कुर्सी पर बैठ कर बड़ी ग़ौर से देखने लगी। बाहर से शान्त भाव प्रकट करने पर भी

उसके मुख पर मुर्दनी छाई हुई थी। स्पष्ट ही उसके मन में यह निश्चत विश्वास जम गया था कि मैं हत्या करने के इरादे से उसे घर लाया हूँ। पर वह जताना चाहती थी कि मृत्यु के भय से वह घबराई हुई नहीं है; बल्कि उसकी आँखें मुझे इस बात के लिए ललकार रही थीं कि मुझे जो कुछ करना हो करूँ। पर मैंने कुछ नहीं किया, केवल अपनी जेब से पिस्तौल निकाल कर उसे मेज़ पर धीरे से रख दिया। उसने एक बार कनखियों से पिस्तौल की ओर देखा, और उसके बाद वह ग़ौर से देखने लगी।

उसकी घबराहट की ओर तनिक भी ध्यान न देने का भाव दिखाकर मैंने धीरे से अपने ऊपरी कपड़े उतारे, और अपने पलंग पर जाकर लेट गया। वास्तव में मैं मानसिक व्यस्तता के कारण बहुत थका हुआ था, और सोने का समय भी हो गया था, क्योंकि ग्यारह बज चुके थे। पर वह कुर्सी पर ही बैठी रही, और प्रायः एक घंटे तक टस से मस न हुई। उसके बाद बत्ती बुझाकर वह कपड़े बिना उतारे ही एक सोफ़ा पर लेट गई। आज पहली बार वह मुझसे अलग सोई।

६

दूसरे दिन एक भयंकर घटना घट गई। सुबह प्रायः आठ बजे के समय मेरी आँखें खुलीं। आँख खुलते ही पलंग पर लेटे-लेटे मैंने देखा कि वह पिस्तौल हाथ में लेकर मेज़ के पास खड़ी है। पता नहीं था कि मैं जगा हुआ हूँ और उसकी प्रत्येक हरकत को देख रहा हूँ। सहसा उसने पिस्तौल हाथ में लेकर मेरी ओर क़दम बढ़ाया। मैंने तत्काल अपनी आँखें बन्द कर लीं और सोने का बहाना किया।

वह धीरे से मेरे पलंग के पास आई, और आकर खड़ी हो गई। कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था, पर उस समय मेरे कान इतने सचेत थे कि उस सन्नाटे का भी 'शब्द' मुझे सुनाई देता था! सहसा मेरी आँखें मेरी इच्छा के विरुद्ध बरबस खुल गईं। मैंने देखा कि वह पिस्तौल का मुख मेरे कपाल के एकदम निकट करके स्थिर खड़ी है। मैंने तत्काल फिर आँखें बन्द कर लीं। कभी-कभी गाढ़ निद्रा की अवस्था में भी क्षण भर के लिए आँखें खुल जाती हैं। निश्चय ही उसे यही विश्वास हुआ होगा कि नींद की हालत में ही मेरी पलकें पल भर के लिए खुल गईं थी, क्योंकि उसके बाद में फिर एक दम मुर्दे की तरह स्थिर लेट गया था। इसके अतिरिक्त उसने यह भी सोचा होगा कि यदि मैंने जाग्रत अवस्था में आँखें खोली होतीं, तो वह भयंकर दृश्य देख कर मैं निश्चय ही अपने प्राणों की रक्षा के खयाल से सँभल कर उठ बैठता।

"शायद उसने देख लिया हो, और वह समझ गई हो कि मैं नींद का ढोंग कर रहा हूँ!"—तत्काल बिजली की तरह यह विचार मेरे मन में दौड़ा। फिर मैंने सोचा—"यदि वह मेरे बहाने से परिचित हो गई होगी, तो निश्चय ही वह जान लेगी कि मृत्यु के सम्बन्ध में मैं कितना उदासीन हूँ, और तब उसे गोली छोड़ने का साहस नहीं होगा और उसका हाथ काँपने लगेगा।"

कुछ देर तक कमरे में अखंड निस्तब्धता छाई रही। सहसा मैंने अनुभव किया कि पिस्तौल का मुँह मेरे सिर के बालों से आ लगा। पर फिर भी मैंने आँखें नहीं खोलीं, यद्यपि मेरे हृदय में एक विचित्र

सनसनी पैदा हो गई थी। पाठक पूछ सकते हैं कि मृत्यु को इतने सन्निकट जानने पर भी मैं नींद का बहाना क्यों किए रहा? असल बात यह थी कि उसने मुझे कायर कहा था, और मैं उसे जता देना चाहता था कि जितना वह समझे बैठी है उतना कायर मैं नहीं हूँ। साथ ही एक क्षीण आशा भी मेरे मन में वर्तमान थी कि मुझे निस्तब्ध अवस्था में पड़ा देख कर शायद वह पिस्तौल चलाने से विरत हो जाय!

कुछ क्षण मैं इसी प्रकार मृत्यु की निस्तब्धता के बीच निश्चल अवस्था में लेटा रहा। जीवन के सम्बन्ध में विरक्ति की एक भावना भी मेरे मन में ज़ोर मारने लगी थी। मैं सोच रहा था—"जब मेरी प्यारी पत्नी ही मुझ पर गोली चलाने को उद्यत हो उठी है, तो फिर मेरे जीने का अर्थ ही क्या रहा!"

सहसा उसने पिस्तौल ऊपर उठा लिया, और उसके क्षीण पद-शब्दों से मैं समझ गया कि वह कमरे से बाहर चली गयी है। मैंने विजयोल्लास के साथ आँखें खोलीं। मैं समझ गया कि आज की घटना से उसके मन पर निश्चय ही गहरा प्रभाव पड़ेगा, और वह अब से सदा के लिए मेरे वश में हो जावेगी।

दूसरे कमरे में जाकर मैंने चाय तैयार की। वह चुपचाप मेरे सामने की कुर्सी पर चाय पीने बैठ गयी। मैंने देखा कि उसके चेहरे का रंग एकदम उड़ गया है, और भयंकर मुर्दनी छाई हुई है। मैं बड़े ज़ोर से उसकी ओर देख रहा था। अकस्मात् उसके रक्तहीन होंठों में एक कृत्रिम मुसकान झलक उठी और उसकी आँखें यह

प्रश्न करती हुई-सी जान पड़ीं—"क्या उसे मेरी हरकत का पता चल गया है या नहीं? क्या इस समय वह चाय पीते हुए उसी बात पर सोच रहा है? अथवा वह उस समय वास्तव में सोचा हुआ था?" पर मैंने उदासीनता का-सा भाव जताते हुए उसकी ओर से आँखें फेर लीं।

दोपहर को मैं बाहर जाकर एक लोहे का पलंग और एक 'स्क्रीन' खरीद लाया। 'स्क्रीन' को 'पार्टीशन' के रूप में कमरे के बीच में खड़ा करके मैंने उसके सोने के लिए एक अलग स्थान बना दिया, और वहाँ लोहे का पलंग लगा दिया। न मैंने एक शब्द उससे कहा, और न वह मुझसे कुछ बोली। पर 'पार्टीशन' से वह समझ गयी कि मैं पिस्तौल वाली घटना से अनभिज्ञ नहीं हूँ।

उस दिन रात के समय वह शान्त दिखाई दी। पर दूसरे दिन सुबह वह भीषण ज्वर से पीड़ित हो उठी। प्रायः छः सप्ताह तक वह पलंग पर रोग की दशा में पड़ी रही।

७

मैं बीमारी की हालत में दिन-रात उसकी शुश्रूषा में व्यस्त रहा। लुकेरिया भी उसकी सेवा में लगी रही। एक दाई भी उसके लिए नियुक्त कर दी। इस बार मैंने पैसे का मोह एक दम छोड़ दिया, बल्कि उस पर अधिक से अधिक रुपया खर्च करने की भावना मेरे मन में जाग उठी। एक योग्य डाक्टर उसे समय-समय पर आकर देख जाता था। उसे मैं प्रतिबार की 'विज़िट' के लिए दस रूबल देता था।

छः सप्ताह बाद जब वह कुछ स्वस्थ हुई, तो पलंग पर से उठ कर धीरे से मेरे कमरे में आई, और एक मेज़ के पास बैठ गई, जो मैंने खास तौर से उसी के लिए खरीदा था। मैं कुछ न बोला, और वह भी चुप रही। उसकी चुप्पी का कारण मैंने स्वभावतः यह लगाया कि वह अपने पिछले व्यवहार के कारण लज्जित और संकुचित हो उठी है। मैं समझ गया था कि मेरी सेवा-शुश्रूषा देखकर और अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मेरी आन्तरिक चिन्ता से परिचित होकर वह मेरे विषय में अपना दृष्टिकोण बदल चुकी है, और स्वभावतः मैं उसके मन पर गहरा समर्थ डालने में समर्थ हुआ हूँ। इसलिए मेरे अहंकार का भाव बहुत बढ़ गया था। उस अहंकार के फलस्वरूप मैं भी उससे अधिक बातें नहीं करता था। वास्तव में यह जान कर कि वह मेरे गुणो की क़ायल हो चुकी है, और अब मेरी कंजूसी और कायरता के सम्बन्ध में मुझपर व्यंग कसने का साहस नहीं कर सकती, मैं अपने आप से अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न हो उठा था।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अपने पिछले जीवन में मुझे बहुत-से कड़वे अनुभव हुए थे, और समाज तथा संसार के अत्याचारों से मैं इस क़दर पीड़ित हो चुका था कि मेरे मन में एक विद्रोह की भावना जाग उठी थी जिस पलटन में मैं अफ़सर के पद पर नियुक्त था वहाँ से मैं अत्यन्त अन्यायपूर्ण अपमान के साथ निकाला गया था, जिसके कारण मेरी सब उच्चकांक्षाएँ मिट्टी में मिल गई थी, और स्वयम् मेरे मन में अपने प्रति घृणा की भावना जागरित हो उठी थी। बात यह हुई थी कि एक दिन मैं थियेटर देखने गया हुआ था। 'इन्टर-

वल' के अवसर पर मैं कुछ खाने-पीने के उद्देश्य से थियेटर के विश्राम-गृह में चला गया। वहाँ और भी बहुत-से मिलिटरी अफ़सर आए हुए थे पर मेरी पलटन का कोई अफ़सर वहाँ नहीं था। सहसा एक अफ़सर ने अपने साथ के अफ़सरों को लक्ष्य करके ऊँची आवाज़ में चिल्लाकर कहा कि वेजुमस्टेव नाम का एक कप्तान (जो हमारी पलटन में नियुक्त था) अभी थियेटर हाल में शराब के नशे में चूर होने के कारण बड़ी वेहूदा बातें बक रहा था और अपने आसपास के व्यक्तियों के साथ बड़े गन्दे ढंग से पेश आ रहा था। बात सरासर झूठ थी, क्योंकि मैं जानता था कि उस दिन वेजुमस्टेव ने क़तई शराब नहीं पी है। दूसरे दिन हमारी पलटन के दूसरे अफ़सरों के कानों में यह बात गई कि किसी एक बाहर के अफ़सर ने वेजुमस्टेव पर मिथ्या कलंक आरोपित किया है, और साथ ही इस बात पर भी सब का ध्यान आकर्षित हुआ कि यद्यपि उस समय मैं घटनास्थल पर मौजूद था और हमारी पलटन का कोई भी दूसरा व्यक्ति वहाँ नहीं था, तथापि मैं सब बातें चुपचाप सुनता रहा, और जिस अफ़सर ने वेजुमस्टेव के सम्बन्ध में नाहक़ अपमानजनक बातें कहने का साहस किया था उसका विरोध किसी भी रूप में मैंने नहीं किया। वास्तव में मैंने उस बात को इस रूप में लिया था कि वह व्यक्तिगत है और पलटन से उसका कोई सरोकार नहीं है। पर मेरे साथी अफ़सरों ने कहा कि इस तरह की बात से तमाम पलटन का अपमान होता है, और जिस अफ़सर ने झूठे अभियोगों द्वारा हमारी पलटन का बदनाम करना चाहा है, उसे द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारना मेरा कर्तव्य है।

पर मैंने यह बात स्वीकार नहीं की। इसके फलस्वरूप मुझे पलटन से अलग हो जाना पड़ा।

पलटन से अलग होने पर मेरी आर्थिक दशा इस क़दर शोचनीय हो उठी कि मुझे वास्तव में मास्को में भीख माँगने को बाध्य होना पड़ा। तीन वर्ष तक मैं घोर विपत्तियों का सामना करते हुए अत्यन्त हीनतापूर्ण और अपमानजनक जीवन बिताता रहा। इसके बाद अकस्मात् एक ऐसी घटना घट गई, जिसके कारण मेरे भाग्य ने पलटा खाया। मेरी एक धर्ममाता की मृत्यु हो गई और वह मरने पर मेरे लिए २००० रूबल छोड़ गई। उन रुपयों से मैंने महाजनी का पेशा करने का विचार कर लिया और यह भी निश्चय कर लिया कि जब तक मैं एक बहुत बड़ी रक़म जोड़ न लूँ, तब तक बहुत कंजूसी के साथ अपना जीवन बिताऊँगा। अपने दीर्घ एकाकी जीवन से मैं उकता गया था, इसलिए मैंने विवाह करना आवश्यक समझा। जैसा कि आप लोग जानते हैं, संयोग-वश एक ऐसी स्त्री से मेरा परिचय हो गया, जिसके शील-स्वभाव पर मैं मुग्ध हो गया और मेरे मन में यह विश्वास जम गया कि वह मेरे लिए अत्यन्त उपयुक्त पत्नी सिद्ध होगी। आज मैं मानता हूँ कि उससे विवाह करके मैंने केवल भूल ही नहीं, वरन् उसके साथ घोर अन्याय भी किया। वास्तव में मैं उसके योग्य नहीं था और हम दोनों के स्वभावों में मूलगत भिन्नता थी। वह विवशता के कारण मुझ से विवाह करने को राज़ी हुई थी, पर मैं अन्धा किसी सुखप्राप्ति के भ्रान्त मोह में पड़ कर उसे विवाह-बन्धन में बाँधने को विकल हो उठा ! मैंने सोचा था कि मैं धीरे-धीरे उसके स्वभाव को अपने आदर्श

के अनुकूल गठित कर लूँगा। पर मेरे इस प्रयास का फल उलटा हुआ। छोटी-छोटी बातों के कारण उसके साथ मेरा विरोध और वैमनस्य बढ़ता चला गया। मेरी नीचताएँ एक-एक करके उसके आगे प्रत्यक्ष होने लगीं और मेरे गुणों से परिचित होने का कोई अवसर ही उसे प्राप्त न हुआ। मेरे शत्रुओं ने मेरे पिछले जीवन की हीनताओं से भी उसे परिचित करा दिया, जिसके फलस्वरूप वह मुझे कायर, पतित और घृणित प्राणी समझने लगी थी।

पर उस पिस्तौल वाली घटना ने मेरा बदला चुका दिया। उस घटना ने उसके हृदय में गहरा प्रभाव डाल दिया, यह मैं स्पष्ट देख रहा था। तब से उसके मन में यह दृढ़ विश्वास सा जमता हुआ दिखाई दिया कि वह मुझे जितना कायर समझे थी, मैं वास्तव में उतना नहीं हूँ। मेरे प्रति उसके मन में सम्भ्रम और कुछ सम्मान का-सा भाव उत्पन्न हो गया। उसके इस भाव-परिवर्तन से मेरे मन में हर्ष अवश्य हुआ, पर साथ ही यह घोर निराशा वज्रभार की तरह मेरी छाती को दबाने लगी कि मैं उसके हृदय में सम्भ्रम का संचार करने में भले ही समर्थ होऊँ, पर उसका प्रेम मैं किसी उपाय से नहीं पा सकता।

फिर भी मैं हार मान न हुआ और आशा का कोई आसार न दिखाई देने पर भी आशा करता चला गया। वह बाहर से अत्यन्त शान्तिपूर्वक मेरे साथ रहने लगी, पर उसके भीतर क्या तूफ़ान मच रहा है, इसका थोड़ा-बहुत अन्दाज़ा लगाने पर भी पूर्ण रूप से उसका अनुमान करने में मैं असमर्थ था।

८

एक बात पर मैं विशेष रूप से ग़ौर कर रहा था। वह यह कि दो-एक महीने से वह अत्यन्त अन्यमनस्क हो उठी थी और सब समय किसी गाढ़ चिन्ता में मग्न रहा करती थी। एक दिन मेरा ध्यान इस बात की ओर विशेष रूप से गया। वह सुई-तागा लेकर एक कपड़े में बेल-बूटे काढ़ रही थी। उसका सिर सुई के ऊपर झुका हुआ था। उसे उस अवस्था में देखकर सहसा मैंने उसके सुस्त चेहरे में एक मुर्दनी छाई हुई देखी, जिसमें मैंने अनुभव किया कि इस बीच उसका स्वास्थ्य एकदम नष्ट हो गया है। मेरे हृदय में एक गहरी चोट पहुँची। मुझे यह भी याद आया कि आजकल वह रात के समय क्षय रोगी के समान खाँसती रहती है। मैं तत्काल एक डाक्टर के पास गया। पर इस सम्बन्ध में मैंने अपनी पत्नी को कोई सूचना नहीं दी।

जब डाक्टर आया, तो उसे देखकर वह आश्चर्य से एक बार मेरी ओर देखने लगी एक बार डाक्टर की ओर एक कृत्रिम हँसी का भाव प्रकट करते हुए उसने कहा—"नहीं, नहीं, मुझे देखने की आवश्यकता नहीं है; मैं बहुत अच्छी हूँ।"

डाक्टर ने सरसरी दृष्टि से उसे देखा, और उसके बाद वह मुझे दूसरे कमरे में ले जाकर बोला कि यदि मैं अपनी स्त्री को हवाबदली के लिए किसी समुद्र के तटपर या किसी स्वास्थ्यकर स्थान में ले जाऊँ, तो उसका स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर सकता है।

डाक्टर के चले जाने पर मेरी स्त्री ने अत्यन्त गम्भीर दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए दृढ़तापूर्वक कहा—"मैं सच कहती हूँ कि मैं भली-चंगी हूँ, और मेरे लिए किसी प्रकार के इलाज की आवश्यकता नहीं है।" यह कहते ही उसका मुँह लाल हो आया। मैं समझ गया कि वह लज्जा का अनुभव कर रही है। और उस लज्जा का कारण भी मुझसे छिपा न रहा। वह इस कल्पना से लज्जित हो रही थी कि वह अभी तक मेरी ही पत्नी है, मैं एक कर्तव्यपरायण पति की तरह उसकी सेवा-शुश्रूषा कर रहा हूँ, और यह जानते हुए भी कि उसने एक दिन पिस्तौल से मेरी हत्या करने की तैयारी की थी!

एक मास बाद, एक दिन मैं प्रायः पाँच बजे के समय अपने आफ़िस में बैठा हुआ अपने बहीखाते का हिसाब देख रहा था। सहसा मेरे कानों में उसके गाने की आवाज़ आई। वह बग़ल वाले कमरे में एक मेज़ के पास बैठकर गा रही थी। आज यह बिलकुल नयी बात थी। इसके पहले मैंने कभी उसे गाते नहीं सुना था। उस अप्रत्याशित घटना का ऐसा मार्मिक प्रभाव मुझपर पड़ा कि मैं अत्यन्त विचलित हो उठा। उसका कंठस्वर रुग्णता के कारण अत्यन्त क्षीण हो गया था जिसके कारण ऐसा जान पड़ता था कि वह गा नहीं रही बल्कि कराह रही है। अकस्मात् खांसी के एक प्रबल झटके के कारण उसे गाना बीच ही में बन्द करना पड़ा। मेरा रोम-रोम एक विवश व्याकुलता से रो पड़ा। खाँसी जब कुछ शान्त हुई, तो वह फिर पूर्ववत् क्रन्दन के स्वर में गाने लगी।

मेरी व्याकुलता का कारण उसके प्रति समवेदना नहीं, बल्कि एक दूसरी ही भावना थी। वह भावना क्या थी ? मैं ठीक तरह से उसे पाठकों को समझा नहीं पाऊँगा। मैं रह-रहकर केवल इस कल्पना से विचलित हो रहा था कि उसने मेरी उपस्थिति में गाना गाया, जिसका अर्थ मैंने यह लगाया कि वह मुझे इस क़दर भूल गई है कि मेरा अस्तित्व ही उसके आगे विलुप्त हो गया है। यदि इसके पहले वह मेरे सामने गाने में संकोच का अनुभव न करती होती, तो मैं कभी इस तरह की बात न सोचता; पर जैसा कि मैं कह चुका हूँ, इसके पहले वह मेरी उपस्थिति में गाने में सदा सकुचाती रही।

कुछ देर तक मैं अपने स्थान में वज्र-स्तम्भित-सा बैठा रहा। इसके बाद धीरे से उठ खड़ा हुआ, और ल्यूकेरिया की सहायता से मैंने अपना कोट पहना। मैंने एक बच्चे की तरह व्याकुलता प्रकट करते हुए ल्यूकेरिया से कहा—"ल्यूकेरिया, तो वह गा रही है !" पर ल्यूकेरिया मेरे आश्चर्य का मर्म कुछ भी न समझ पाई। मैंने उससे पूछा—"आज वह पहली बार गा रही है, क्यों ?"

"नहीं, इसके पहले भी उसने आपके पीछे दो-एक बार गाया है।"

मैं बाहर चला गया, और निरुद्देश्य भाव से सड़कों पर टहलने लगा। कुछ समय बाद जब मैं घर वापस आया तो मेरी पत्नी का क्लान्त और करुण गीत-स्वर अभी तक मेरे हृदय में अत्यन्त निर्ममता के साथ झनझना रहा था। रह-रहकर यह भावना मुझे वेदन-विद्ध कर रही थी कि अब वह अपने अन्तर के भावों में इस क़दर तन्मय होना सीख गई है कि मुझे एकदम भूल गई है, और मेरा

अस्तित्व उसके लिए कुछ भी अर्थ नहीं रखता। एक शराबी की तरह गिरते-पड़ते मैं अपने सोने के कमरे में पहुँचा। वहाँ वह उसी मेज़ के पास बैठी हुई कुछ सी रही थी। गाना बन्द हो चुका था, और उसके मौनभाव ने एक आतंकजनक गम्भीरता धारण कर ली थी। मैं अपने आपे में नहीं था, और मोहमग्न अवस्था में उसके निकट एक कुर्सी पर जा बैठा। उसने एक सरसरी दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा। उसकी उस दृष्टि में भय का आभास झलक रहा था। मैंने बेसुध-सा होकर सहसा उसका हाथ पकड़ लिया, और उससे कुछ कहा। क्या कहा, मुझे इस समय याद नहीं आता; कारण यह है कि मैं उस समय अपने होश में नहीं था। पर इतना याद आता है कि मेरी बातें सुनकर अथवा मेरे रंग-ढंग में एक अस्वाभाविक परिवर्तन का अनुभव करके वह आतंक से सिहर उठी थी। सहसा मैं अपने दोनों हाथों से उसके दोनों पाँव पकड़ कर उसके चरणों पर दंडवत् होकर लोट गया। वह भीत और चकित होकर उछल कर उठ खड़ी हुई। पर मैं उस समय एक अपूर्व पुलकप्रद पागलपन की अनुभूति से विह्वल हो उठा था। जिस रोमांच का अनुभव मैंने उस समय किया वैसा जीवन में कभी नहीं किया था। मैं बार-बार उसके दोनों पैरों को चूमता रहा। वह भ्रान्त भाव से मेरे उस उन्माद को देख रही थी। धीरे-धीरे उसकी भ्रान्ति चिन्तन में परिणत हो गई और वह यह समझने की चेष्टा करने लगी कि मेरे उस उन्माद का वास्तविक मर्म और कारण क्या है। और इसके बाद धीरे-धीरे उसके मुख में भय और चिन्ता के स्थान में एक अत्यन्त स्निग्ध और मधुर-

मुसकान खिल उठी। पर वह सरस मुसकान कुछ ही क्षणों तक रही और अकस्मात् वह हिस्टीरिया के दौरे की सी अवस्था में बेसुध होकर ठहाका मारती हुई हँसने लगी। मैंने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और दंडवत् अवस्था में ही मैं उसका अंचल होंठों से लगाकर चूमने लगा और अस्फुट कंठ से बोला—"मुझे अनन्त काल तक अपने इस अंचल को चूमते रहने की आज्ञा दो!"

वह सिर से लेकर पाँवों तक सिहर रही थी। मेरी बात के उत्तर में वह कुछ न बोली, पर सहसा फफक-फफककर रोने लगी। कुछ ही समय बाद हिस्टीरिया के दौरे ने पूर्ण रूप से उसपर आक्रमण कर लिया। मैं आशंकित होकर उठ खड़ा हुआ, और उसे पकड़कर मैंने पलंग पर लेटा दिया। जब 'फिट' समाप्त हो गया, तो वह उठ बैठी और मेरे दोनों हाथों को प्रेमपूर्वक पकड़कर उसने अत्यन्त स्निग्ध, सरस और सकरुण स्वर में कहा—"शान्त होओ, इतने अधीर क्यों होते हो।" यह कहकर फिर रोने लगी। मैं उसे सान्त्वना देता रहा। मैंने उससे कहा कि मैं शीघ्र ही उसे हवा-बदली के लिए बूलोन ले जाऊँगा और वहाँ निश्चय ही उसका स्वास्थ्य पूर्णतया अच्छा हो जायगा। साथ ही मैंने उसे यह भी विश्वास दिलाया कि मैं महाजनी का पेशा सदा के लिए छोड़ दूँगा, और भविष्य में कभी किसी बात के लिए भी उसका जी नहीं दुखाऊँगा। वह अत्यन्त उत्सुकता से मेरी बातें सुनती रही। पर उन बातों से उसे सान्त्वना मिलने के बदले उसके मुख में भय के चिह्न स्पष्ट से स्पष्टतर दिखाई देने लगे। पर मेरे हृदय में प्रेमोन्माद समा गया था और यह भावना बढ़ती

चली जाती थी कि उसके चरणों के नीचे आजीवन लोटता रहूँ और उसके तलवों को चूमता रहूँ।

मैंने कहा—"मैं तुमसे केवल इतना ही चाहता हूँ कि मुझे एक कुत्ते की तरह अपने पास रहने की आज्ञा दे दो। मुझसे तुम घृणा करती हो, यह मैं जानता हूँ। पर क्या अपने चरणों पर पड़े रहने का अधिकार भी मुझे न दोगी? बोलो! बोलो!"

कुछ देर तक वह कुछ नहीं बोली। मुझे ऐसा जान पड़ा कि वह कुछ बोलना चाहती है, पर गला रुँध जाने के कारण बोल नहीं पाती। अन्त में प्रबल चेष्टा से उसका कंठ खुला। उसने कहा—"मेरा—मैं यह समझे बैठी थी कि तुम मुझे इसी दशा में पड़े रहने देना चाहते हो और मेरे मरने या जीने के सम्बन्ध में एकदम उदासीन हो!" यह कहते ही उसका मुख लज्जा से लाल हो आया।

उसकी बात के ढंग से मैं समझ गया कि उसके मन में मेरे सम्बन्ध में सन्देह का जो काँटा इतने दिनों से गड़ा हुआ था वह मेरी आज की बातों से और व्यवहार से एकदम उखड़ गया है। इस कल्पना से मेरे हर्ष का पारावार न रहा और इस आशा से कि कल से हम दोनों बिलकुल नये ढंग से जीवन बिताना आरम्भ कर देंगे और पिछली सब कटुताओं को विस्मृति के अतल सागर में डुबोकर एक अपूर्व प्रेमपूर्ण अनुभूति का सुख प्राप्त करेंगे, मैं रह-रह कर पुलकित होने लगा।

अँधेरा होते ही उसकी तबीअत कुछ ज़्यादा खराब हो गई, जिससे मैं बेतरह घबरा उठा। मैं भगवान से प्रार्थना करने लगा कि

मेरे हृदय में जिस नव-जीवन की आशा का संचार आज प्रथम बार हुआ है, उसमें कोई विघ्न न पड़ने पावे। मैं मन-ही-मन 'बूलोन-बूलोन' की रट लगाने लगा। न जाने क्यों, मेरा मन अत्यन्त भोलेपन के साथ इस बात पर विश्वास करने लगा था कि बूलोन पहुँचते ही मेरी स्त्री बिलकुल चंगी हो उठेगी और फिर मेरा स्वप्न पूर्णतया सफल हो जावेगा।

९

पर यह मेरी दुराशा थी। हम दोनों इतने दिनों तक अत्यन्त निकट रहने पर भी एक-दूसरे से इतने विभिन्न रहे कि अब मेरी अत्यधिक भाव-प्रवणता भी उसके हृदय में मेरे प्रेम के प्रति विश्वास जगाने में असमर्थ सिद्ध हो रही थी। उसका मन किसी तरह भी यह मानना नहीं चाहता था कि जो व्यक्ति इतने अर्से तक अपनी संकीर्ण स्वार्थमयी हीन प्रवृत्तियों के प्रदर्शन से उसे अपमानित और पद-दलित करता रहा है, उसमें अकस्मात् एक महत् और उदार भावना का उदय हो सकता है। इसलिए मेरी भावुकता का 'अभिनय' देख कर और मेरे मुँह से नव-जीवन की बातें सुनकर वह शान्त और स्थिर होने के बजाय और भी अधिक सशंकित हो उठी थी। फिर भी उसने सलज्ज भाव से मुझे सान्त्वना देते हुए कहा—"तुम्हें इतना अधिक विचलित नहीं होना चाहिए!" पर मैंने उसके इस अनुरोध पर कोई ध्यान न दिया, और केवल यही कहता चला गया कि "हम लोग बूलोन जावेंगे, बूलोन! वहाँ नव-वसन्त के

उज्ज्वल प्रभात में हम लोगों का नया संसार बनेगा, और नया जीवन आरम्भ होगा !''

मैंने महाजनी का कारोबार एकदम बन्द कर दिया। मैं जानता था कि मेरा यह पेशा ही सबसे अधिक तीखे काँटे के रूप में उसके हृदय में गड़ा हुआ है। इसके बाद मैंने अपनी स्त्री के आगे यह प्रस्ताव रखा कि उस पेशे से जितना कुछ कमाया है वह सब मैं ग़रीबों में बाँट देना चाहता हूँ, केवल जो ३००० रुबल मुझे अपनी धर्ममाता से प्राप्त हुए हैं उन्हें मैं बूलोन की यात्रा के लिए अपने पास रखूँगा। उसके बाद जब उसका स्वास्थ्य अच्छा होने पर हम लोग बूलोन से लौटेंगे, तो किसी ऐसे उपाय से अपनी जीविका निर्वाह करेंगे जिसके द्वारा निर्धनों का शोषण होने की कोई सम्भावना न हो, अर्थात् अपने ही रक्त और पसीने की कमाई से ईमानदारी और सचाई के साथ जीवन बितावेंगे। मेरे प्रस्ताव की बात सुनकर उसने कोई उत्तर नहीं दिया, और केवल मुस्कराने लगी। मैं समझ गया कि अभी तक वह मुझे अविश्वास की ही दृष्टि से देखती है। उसके मन में यह दृढ़ धारणा जमी हुई थी कि मैं भावुकतावश महत् आदर्श की कल्पना को क्षणिक रूप से अपनाकर एक अच्छा अभिनय कर रहा हूँ। पर उसके इस अविश्वास की ओर से मैंने जानबूझ कर मुँह मोड़ लिया, और उसके कारण अपने भावी सुख की कल्पना को नष्ट न होने दिया।

यह मेरी मूर्खता ही थी कि उस दिन उन्माद-ग्रस्त होकर मैंने उसके चरणों को चूमना आरम्भ कर दिया। यह बात मुझे मालूम

होनी चाहिए थी कि वह भावुकता के प्रदर्शन से जितना घबराती है उतना और किसी भी बात से नहीं। इसका कारण यह था कि बहुत छोटी अवस्था में ही उसे घोर संघर्षमय जीवन बिताने को बाध्य होना पड़ा था, जिसके फलस्वरूप उसे जीवन की वास्तविकता के अनेक कटु-अनुभव हो चुके थे। अतएव भावुकतापूर्ण प्रदर्शनों अथवा उद्गारों को असत्य और कृत्रिम समझना उसके लिए स्वाभाविक था।

उक्त घटना के दो-एक दिन बाद उसने एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित साहित्यिक-कृति के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट किया। इधर कुछ दिनों से पुस्तक-पाठ की रुचि उसमें फिर से जागरित हो उठी थी। उसका मन्तव्य सुनकर मैं वास्तव में चकित रह गया। उसकी विवेचना किसी विज्ञ आलोचक के अनुरूप थी। मुझसे रहा न गया, और मैं कह उठा—"तुम्हारा साहित्य-ज्ञान वास्तव में बहुत बढ़ा-चढ़ा है। इतनी छोटी अवस्था में तुमने जो रसज्ञता प्राप्त की है, उसका एक साधारण अंश भी मैं प्राप्त नहीं कर सका हूँ।" मेरे मुँह से इस प्रकार की बात सुनकर उसका मुँह लज्जा से लाल हो आया और उसने सिर नीचा करके कहा—"तुममें अतिशयोक्ति की आदत पड़ गई है। तुम्हारी इस तरह की बातों से मुझे बहुत कष्ट होता है।"

मैंने अपनी मूर्खतावश यह समझा कि वह नारी-सुलभ संकोचवश ऐसा कह रही है, और वास्तव में मुँह से अपनी सच्ची प्रशंसा सुनकर वह मन-ही-मन प्रसन्न ही हुई होगी। उसी तैश में मैंने अकस्मात् उस दिन की घटना का उल्लेख कर दिया जब एफिमोविच के साथ एक बन्द कमरे में उसकी भेंट हुई थी और मैं बगल वाले कमरे में छिपकर

दोनों की बातें सुन रहा था। मैंने इस सिलसिले में भी उसकी बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा कि उस दिन उसने उस घृणित कामी कुत्ते की एक-एक बात को ठुकराकर जिस अपूर्व पवित्रता और उन्नत चारित्रिक बल का परिचय दिया उसे मैं कभी भूल नहीं सकता।

मेरी पत्नी को जब मालूम हुआ कि एफिमोविच के साथ उसकी गुप्त भेंट की बात मुझे मालूम है, यहाँ तक कि मैंने छिपकर दोनों की सब बातें सुन भी लीं, तो वह आतंक से सिहर उठी और उसके मुख में भ्रान्ति की एक प्रगाढ़ छाया अंकित हो गई। सहसा अपने दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँप कर वह रो पड़ी। अपनी चरम मूर्खता का यह घोर दुष्परिणाम देखकर मैं रह न सका और उसके पैरों पर गिड़गिड़ाकर उन्हें चूमते हुए उससे क्षमा प्रार्थना करने लगा। फल यह हुआ कि फिर एक बार उस पर हिस्टीरिया का आक्रमण हो गया।

रात में वह काफ़ी शान्त हो चुकी थी, और हम दोनों साथ ही भोजन करने बैठे थे। सुबह होते ही वह मेरे पास आई, और उसने अत्यन्त कातर भाव से यह स्वीकार किया कि उसने मेरे साथ अन्याय किया है, और जाड़ों भर वह इस भावना से अत्यन्त पीड़ित रही है कि उसने मुझे ग़लत समझा था। उसने कहा—"मुझे अब पूर्णतया विश्वास हो गया है कि तुम्हारा चरित्र अत्यन्त महत्त् और उदार है। अब से मैं सच्चे हृदय से तुम्हारा आदर करूँगी।"

उसकी यह बात सुनकर मैं एक पागल की तरह अधीर हो उठा और उसे छाती से लगाकर मैंने उत्कट प्यार से उसका मुँह चूम

लिया। मेरे हृदय में इस अनुभूति ने निश्चित रूप से घर कर लिया कि इतने दिनों बाद मेरे जीवन का चरम स्वप्न सत्य में परिणत हुआ। वह मुझे चाहने लगी है, इस कल्पना में जो सुख था उसका वर्णन मेरी शक्ति के बाहर की बात है। इसके बाद मैं बूलोन-यात्रा के लिए पासपोर्ट प्राप्त करने के उद्देश्य से बाहर चला गया। प्रायः दो घंटे मैं बाहर रहा। इसके बाद जब घर लौटा तो—भगवान्! उस भयावह दृश्य को देखने की कल्पना मैं इस जीवन में कभी नहीं कर सकता था। उफ़! यदि केवल पाँच मिनट पेश्तर मैं पहुँच गया होता तो सम्भव है कि वह विभीषकापूर्ण घटना न घटती। पर नहीं, जिस भाग्य ने जीवन भर धोखा दिया वह इस बार भी धोखा दिए बिना कैसे रह सकता था! दरवाज़े पर पहुँचते ही मैंने देखा कि एक बहुत बड़ी भीड़ वहाँ जमा है। एक अज्ञात आशंका से मैं काँप उठा।

ल्यूकेरिया ने बाद में मुझे विस्तारपूर्वक उस भयंकर दुर्घटना के पहले की सब बातें सुनाईं। उसने कहा कि मेरे लौट आने के प्रायः बीस मिनट पूर्व वह मेरी पत्नी के पास किसी विषय पर कुछ पूछने गई थी। उसके पास जाकर उसने देखा कि वह (मेरी पत्नी) महात्मा ईसा की माता की पवित्र मूर्ति को (वही मूर्ति जिसे एक दिन वह मेरे पास गिर्वी रखने लाई थी) अपने सामने रख कर प्रार्थना कर रही थी।

ल्यूकेरिया ने उससे पूछा—"मालकिन, तुम क्या कर रही हो!"

मेरी पत्नी ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं ल्यूकेरिया; मुझे अभी कुछ समय के लिए तुम एकान्त में रहने दो। अच्छा तनिक ठहरो!" यह

कहकर वह ल्यूकेरिया के पास गई और परम स्नेह से उसने उसका मुँह चूमा।

ल्यूकेरिया ने पूछा—"क्या तुम सुखी हो ?"

"हाँ, ल्यूकेरिया !"

"तुम्हारे पति ने बड़ी भारी भूल की कि इतने दिनों तक उसने अपने घमंडी स्वभाव के कारण तुम्हारे पास आकर तुमसे क्षमा नहीं माँगी। कुछ भी हो, भगवान् को धन्यवाद है कि इतने दिनों बाद तुम दोनों में फिर से मेल हो गया है।"

मेरी स्त्री ने उत्तर दिया—"हाँ, यह बहुत अच्छा हुआ है। अब तुम जाओ, ल्यूकेरिया !" यह कहकर वह एक विचित्र भाव से मुस्कराई। उस मुसकान का ठीक अर्थ समझने की योग्यता न रखने पर भी ल्यूकेरिया किसी अज्ञात आशंका से सिहर उठी। उस समय वह उस कमरे से चली गयी, पर उसके चित्त में अशान्ति छा गयी थी, इसलिए प्रायः दस मिनट बाद वह फिर लौटकर मेरी स्त्री के कमरे में गयी। ल्यूकेरिया का कहना है कि उस समय मेरी स्त्री एक दीवार के सहारे खड़ी थी और उसका सिर नीचे को झुका हुआ था। स्पष्ट ही वह किसी गहन चिन्ता में मग्न थी। वह ऐसी बेसुध-सी जान पड़ती थी कि ल्यूकेरिया उसे देख रही है, इसका पता उसे नहीं था। ल्यूकेरिया ने देखा कि बीच में एक-आध बार उसके चेहरे में पहले की ही तरह एक रहस्यपूर्ण मुसकान झलक उठी। स्पष्ट ही वह अपने मन की किसी कल्पना पर मुसकरा रही थी। कुछ समय बाद ल्यूकेरिया वहाँ से चली गयी। अकस्मात् उसे खिड़की के खोले जाने

का शब्द सुनाई दिया। वह दौड़कर फिर मेरी स्त्री के पास गयी—यह कहने के लिए कि बहुत सर्दी पड़ रही है, और खिड़की खोलने से उसकी तबीअत ज़्यादा ख़राब हो जावेगी।

वहाँ जाकर उसने देखा कि मेरी स्त्री खिड़की के आले पर चढ़ गयी है और अपने हाथों में देवी की प्रतिमा लिए हुए खड़ी है। ल्यूकेरिया ने मुझसे कहा—"मेरी ओर उसकी पीठ थी। मैं घबरा उठी और चिल्लाने लगी—'मालकिन! मालकिन!' मेरी आवाज़ सुनकर वह कुछ डगमगायी। मैंने सोचा कि वह मेरी ओर मुड़ना चाहती है। पर ऐसा नहीं हुआ। उसने खिड़की की ओर एक क़दम और बढ़ाया, और प्रतिमा को अपनी छाती से लगाकर वह खिड़की से बाहर कूद पड़ी।"

जब मैं अपने घर के आँगन में पहुँचा, तो उसके शरीर में ताप अभी तक शेष था और उसकी आँखें मेरी ओर केन्द्रित-सी मालूम होती थीं। आरम्भ में कुछ समय तक वहाँ बड़ा तहलका-सा मचा रहा, पर शीघ्र ही एक भयंकर सन्नाटा छा गया। जो लोग वहाँ भीड़ लगाए खड़े थे वे मेरे आने पर एक-एक करके धीरे-धीरे वहाँ से हट गये। केवल मेरी स्त्री की लाश मेरे आगे निश्चल और निस्तब्ध अवस्था में पड़ी हुई थी। बीच-बीच कुछ व्यक्ति मेरे पास आकर कुछ कहते थे, पर मैं इस क़दर विभ्रान्त हो उठा था कि कौन क्या कह रहा है, इसका तनिक भी ध्यान मुझे न था। ल्यूकेरिया का कहना है उसने भी मुझ से कुछ कहा, पर मैं बिलकुल बेसुध खड़ा था और उसकी बात मेरे कानों तक नहीं पहुँची। केवल एक बार

किसी एक व्यक्ति के ये शब्द मैं सुन पाये—"उसके मुँह से ख़ून की नदी-सी उमड़ चली थी, और इसी कारण उसका दम घुट गया। हाँ, ख़ून की नदी उमड़ चली थी !" यह कह कर उस व्यक्ति ने ज़मीन पर पड़े हुए रक्त की ओर उँगली से संकेत किया। जहाँ तक मुझे याद आता है उसने उस रक्त को उँगली से छुआ भी, और वह बार-बार यही कहता था कि "इससे उसका दम घुट गया, उसका दम घुट गया !"......

मैं उन्माद-ग्रस्त सा होकर मुट्ठी बाँधे हुए उसकी ओर झपटा (जैसा कि ल्यूकेरिया ने बाद में मुझे याद दिलाया) और विकट शब्द से गरजते हुए बोला—"तुम्हारा क्या मतलब है ? किसका दम घुट गया ?"

उफ़ ! सारी घटना अत्यन्त भीषण और आतंकजनक थी ! वह एक ऐसी अप्राकृतिक, असम्भव और अस्वाभाविक घटना थी कि सोच-सोच कर मेरा सिर चकराने लगता है !